

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178836

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/K 4Nw Accession No. H ²⁷²⁷~~2727~~

Author श्री. गंगा का. व.

Title विज्ञान

This book should be returned on or before the date last marked below.

निर्मोही

स्व० कुशवाहा बालन्त

प्रकाशक
त्रिलोक कुशावाहा
कान्त साहित्य सदन,
महुवरिया, मिर्जापुर

●
नवीन संस्करण
चार रुपया
●

मुद्रक
चिनगारी प्रेस, वाराणसी

तुरन 'को'

चूड़ियों खनक उठीं । गोरे-गोरे हाथों में मधुर कम्पन हुआ । पतली उँगलियों ने पकड़ी हुई पुस्तक नीचे रख दी । सुन्दर नासिका ने श्रम की श्वाँस खींची और पुष्ट वदस्थल एक बार काँप कर पुनः बेहोश हो गए । मदभरे नयन, खिड़की के बाहर, बादल के एक सफेद टुकड़े पर सवार होकर, नीले आकाश पर विचरण करने लगे ।

बड़ी ही सुन्दर लग रही थी वह ।

जैसे चन्द्रमा का सारा स्निग्ध सौन्दर्य लूटकर उसने अपने मुख पर रख लिया हो —

जैसे गुलाब की सारी लालिमा उसके कपोलों पर आ बसी हो—

जैसे शहद की मधुरता उसके होठों पर छा गई हो—

विभोर था मधुकर । एक टक देख रहा था, उसके सौन्दर्य की ओर । इतना मादक था उसका रूप, कि मधुकर के नेत्र नशे से लाल-लाल हो उठे ।

पंजाब मेल तोत्र गति से भाग रही थी, सेकेन्ड क्लास का डिब्बा था और उसी में बैठे थे वे दोनों, मधुकर और वह युवती !

सिवा उनके, डिब्बे में कोई न था ।

कानपुर से दोनों साथ ही सवार हुए थे और तब से वह युवती बराबर मौन रही थी । हाँ, कभी-कभी वह अपने मदभरे नयन धुमाकर तिरछे-तिरछे मधुकर की ओर देख अवश्य लेती थी और तब दोनों के नेत्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तभी दोनों के अवयव में एक अव्यक्त बेचैनी भर जाती थी ।

“क्या मैं वह पुस्तक देख सकता हूँ...—” मधुकर का साहसपूर्ण प्रश्न था ।

युवती का ध्यान भंग हुआ । उसके मदभरे नयन, बादलों की सवारी करना छोड़कर, मधुकर के उल्लसित नेत्रों से जा मिले । मधुर सिहरन-सी दौड़ गई उन दोनों के हृदय में ।

और तब युवती के सुकोमल हाथों ने वह पुस्तक उठाकर मधुकर की ओर बढ़ा दिये । बोली वह कुछ नहीं !

मधुकर ने पुस्तक ले ली ।

उलट-पुलट कर देखा, तो ‘लवंग’ थी ।

“कैसी है यह पुस्तक ?”—पूछा मधुकर ने । वह उस सौन्दर्यमयी युवती से बातें करना चाहता था ।

युवती ने मन्द मुस्कान के साथ उत्तर दिया—“अच्छी है !”

और तब, उसके बाद, कुछ देर तक, दोनों एक दूसरे के नेत्रों की पुतलियों में न जाने क्या खोजते रहे !

“आप उपन्यास पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं क्या ?”

युवती ने पूछा, मधुकर से ।

“जी नहीं, छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियाँ ही मुझे पसन्द आती हैं !” मधुकर ने उत्तर दिया—“यों उपन्यास कोई बुरी चीज नहीं....”

“क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ ?—”

कहते-कहते युवती के कपोलों पर लज्जा ने अपनी लाल तुलिका फेर दी ।

“जी हाँ ! अवश्य !”—मधुकर ने कहा—“मेरा नाम मधुकर है...”

“रहते कहाँ हैं आप ?”

“कानपुर में...”

“कहाँ जा रहे हैं ?”—

पूछते-पूछते युवती कुछ सकुच-सी गई। उसे लगा, जैसे एक अपरिचित युवक से इतनी खुली बातचीत करना कदाचित् ठीक नहीं।

“मिर्जापुर जा रहा हूँ...अपने एक मित्र से मिलने...”

उत्तर दिया मधुकर ने।

इस बार युवती चुप रही। फिर कोई प्रश्न न पूछा।

मधुकर ने उसके मादक नयनों में देखा, तो ऐसा जान पड़ा जैसे उनमें मदिरा का अगाध सागर लहरा रहा हो, जैसे उनमें मधुकर के लिए सन्देश भरा हो, मूक आमन्त्रण हो।

युवती की अवस्था यौवन द्वारा चूमी जा रही थी। ऊपर से आधुनिक परिधान ने उसे निखार दिया था।

मधुकर युवक था। अभी इसी साल कालेज से बी० ए० पास किया था। उसके परिवार में उसकी माँ के अतिरिक्त और कोई न था। बनावट उसके मार्ग का कंटक था, फिर भी वह प्रसन्न था।

सीधी-सादी पोशाक में उसकी सुन्दर आकृति आकर्षण की वस्तु थी।

मौन सन्देश चल रहे थे, दोनों ओर से एक दूसरे की आँखों की भाषा पढ़ रहे थे वे।

“क्या मैं आपका परिचय जानने का साहस कर सकता हूँ !”—
पूछा सिंग्घ वाणी में मधुकर ने।

“जी नहीं !...”

कहकर शोखी से मुस्करा पड़ी वह। और उसकी अपनत्व भरी उस मुस्कराहट ने मधुकर को निहाल कर दिया।

“आपका परिचय जानने की मुझे बहुत इच्छा है—” मधुकर ने अपना मन्तव्य प्रकट किया।

“परन्तु इन्सान की हर इच्छा पूरी नहीं होती !”—युवती के अघरोँ पर एक क्षण के लिए बिजली चमक उठी।

“.....”

चुप रहा मधुकर । सोचा उसने, शायद वह अपना परिचय बताना नहीं चाहती । परिचय जानने के लिए वह अधिक हठ भी नहीं कर सकता, क्योंकि अभी घनिष्टता इस हद तक नहीं पहुँची थी ।

लाचार वह पुस्तक पढ़ने लगा ।

और वह युवती पुनः एकाग्रमना होकर खिड़की के बाहर भागते हुए वृक्षों कि पंक्ति देखने लगी ।

मधुर हवा के भोंकों ने, उसके यौवन को गुदगुदा कर, न जाने कब उसके नयन कोटरों में नींद ला दी—

मधुकर यह देख न सका । वह पुस्तक पढ़ता रहा ।

थोड़ी देर में पंजाब मेल हाँफती हुई इलाहाबाद स्टेशन पर आ खड़ी हुई और एक टी. टी. आई ने टिकट जाँचने के लिए डिब्बे में प्रवेश किया ।

तो मधुकर ने अपना टिकट उसके हाथ में दे दिया ।

वह युवती अभी तक निद्रामग्न थी, कहीं का मधुर स्वप्न देख रही थी ।

“यह तो हुआ आपका टिकट !—” ज़ेकर बोला—“मगर आपकी देवी जी का टिकट कहाँ है !...”

चौंक पड़ा मधुकर । पुनः कुछ सोचकर बोला—“माफ कीजियेगा । एक टिकट हमसे खो गया । आप चार्ज कर सकते हैं...”

ज़ेकर ने रुपये लेकर रसीद दे दी और बाहर चला गया । पञ्जाब मेल पुनः तीव्र गति से भाग चली ।

मधुकर पुस्तक पढ़ने लगा ।

“हाँ ! तो आपकी देवी जी कहाँ हैं !”—

स्वर सुनकर चौंक पड़ा मधुकर । देखा तो वह युवती जग गई थी और मंदिर भंगिमा से मधुकर की ओर देखकर पूछ रही थी ।

“कौन देवी जी !”—पूछा मधुकर ने ।

“जिनके लिए अभी-अभी आपने टिकट बनवाया है...” युवती बोली ।

मधुकर का मुँह आरक्त हो उठा । कहा उसने—“बात यह है कि आपको नींद आ गई थी, इसलिए मैंने आपको जगाया जाना पसन्द नहीं किया...”

“धन्यवाद !...” युवती बोली—“मगर टिकट तो मेरे पास था ही—आपने व्यर्थ ही रुपये फेंक दिये...”

“मुझे आपके आराम का खयाल था, इसलिए...” कहते-कहते रुक गया मधुकर और उत्सुक नेत्रों से देखा उस युवती की ओर, जिसके सौन्दर्य ने उसके हृदय में हलचल मचा दी थी ।

युवती भी एकटक उसी की ओर देख रही थी । जरा-सा शर्माकर बोली—“आपने मुझपर बड़ी कृपा की...”

यह सच था कि दोनों के हृदय एक दूसरे के बहुत समीप आ गये थे । रेल के निर्जीव डिब्बे में इनका वह मिलन, मानों एक मधुमय मिलन था ।

मधुकर को यह चिन्ता अवश्य थी कि युवती ने अब तक अपना कुछ भी परिचय न बताया था और न तो यह बताया था कि उसे कहाँ जाना है ।

अन्त में—

आ ही गया मर्जापुर स्टेशन । मधुकर को यहीं उतरना था । उस युवती से विलग होने की आशंका ने उसे निर्जीव बना दिया था ।

युवती उसके चेहरे से उसके हृदय का भाव भाँप गई । सजग मुस्कान के साथ बोली—“घबराइये नहीं आप । हमारी मित्रता का यही अन्त न होगा । हम आप फिर मिलेंगे...”

परन्तु मधुकर समझ नहीं पा रहा था कि अब वह उससे कहाँ मिलेगा ! अपना छोटा-सा सूटकेस उठा लिया उसने और युवती को मौन अभिवादन करके चल पड़ा ।

“मधुकर ! ठहरो...”

पीछे से आवाज आई । मधुकर ने घूमकर देखा तो उसका मित्र जीवन खड़ा था । मधुकर के आने की सूचना पाकर वह उसे स्टेशन तक लेने आया था ।

मधुकर को देखकर जीवन बहुत प्रसन्न था । आज बहुत दिनों के बाद दोनों मित्र मिल रहे थे । मधुकर और जीवन कानपुर में कालेज के सड़पाठी थे । दोनों में खूब पटती थी ।

परन्तु अपने पिता के अचानक स्वर्ग सिंघार जाने से जीवन को अपनी पढ़ाई में हाथ धोना पड़ा और कानपुर से मिर्जापुर चला आया । अब साल भर से वह घर ही पर रहकर अपना व्यापार देखता है ।

जीवन शहर के धनाढ्य सेठों में गिना जाता है । वह ‘जीवन लैक फैक्टरी’ का मालिक है । लाख का यह एक बहुत बड़ा कारखाना, उसी की सम्पत्ति है ।

जीवन के बहुत अनुरोध करने पर, आज पहले पहल मधुकर मिर्जापुर आया है । इसके पहले वह कभी जीवन के घर न आया था ।

“बहुत दुबले हो गये हो मधुकर—”

जीवन, मधुकर को ऊपर से नीचे तक देखता हुआ बोला ।

“और तूम तो बहुत मोटे हो गये हो न ?—”

मधुकर ने व्यङ्ग्य किया ।

एक था गरीब—एक था अमीर !

मगर दोनों में प्रगाढ़ मैत्री थी । जीवन कभी यह न सोचता था कि वह धनवान है, उसे एक निर्धन से मित्रता न करनी चाहिये ।

और न तो मधुकर ही कभी यह सोचता था कि वह गरीब है, उसे एक अमीर की सहानुभूति न अपनानी चाहिए ।

दोनों मित्र बातें करतै-करते बाहर आये। बाहर जीवन की बगगी खड़ी थी। दोनों बैठ गये। बगगी चल पड़ी।

“मेरी चिट्ठी तुम्हें मिली थी न ?”—मधुकर ने पूछा।

“मिली थी, तभी तो स्टेशन तक आ सका !” कहा जीवन ने।

“तुमने अब तक अपनी शादी नहीं की ?”—

“अभी तो पिताजी के मरने के बाद से व्यापार सम्हालने में लगा हूँ।”—जीवन बोला—“शादी तो होगी ही, जल्दी क्या है ? अभी तो कंचन है ही,—मेरी देख-रेख कर लेती है वह !...”

जीवन की बहिन का नाम था कंचन। उसके परिवार में केवल दो ही प्राणी थे, कंचन और वह।

“कंचन कौन !...” मधुकर कुछ सोचते हुए बोला—“तुम्हारी बहन का नाम है न, कंचन !...”

“हाँ !...तुमने तो कभी उसे देखा नहीं—बड़ी बातूनी और चंचल है—तुम्हें देखकर बड़ी खुश होगी—तुम्हें देखने की उसे बहुत लालसा भी है...मगर आज कल तो वह लखनऊ गई हुई है। आशा है, दो, एक दिन मैं आ जायगी...तुम्हारी माताजी तो सकुशल हैं न ?”

“उनकी न पूछो।” मधुकर ने कहा—“अब जितने दिन चल रही हैं, उतने ही दिन बहुत हैं।...”

“बूढ़ी भी तो हो चुकी हैं बहुत।...”

“हाँ !...और अब तो उनका स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जा रहा है.....इतनी गरीबी में उन्होंने मुझे इतना पढ़ाया-लिखाया, मगर अब भी कुछ कमाने लायक न हुआ।...”

“तुम तो मूर्ख हो...” जीवन मधुर झिड़की देता हुआ बोला—“पचास बार पत्र लिखा कि तुम्हें अन्य किसी जगह भटकने की आवश्यकता नहीं। तुम अपनी माँ को लेकर यहीं चले आओ और हमारे काम

में हाथ बटाओ । हमारा अकेलापन भी दूर हो जाय...मगर इजरत मेरी सुनेंगे कैसे !...”

“भाई ! मैं क्या कहूँ !...माता जी जब मानें, तब तो !...मेरे मन की कोई बात तो है नहीं...”

जीवन की भव्य श्रद्धालिका के सामने आकर बगी रुकी । नौकर चाकर दौड़ पड़े और आशा की प्रतीक्षा में हाथ बाँधकर खड़े हो गये ।

आश्चर्य हुआ मधुकर को, यह देखकर कि दो आदमियों के कुटुम्ब में इतने सेवक !

मधुकर जब श्रद्धालिका के भीतर पहुँचा, तो वहाँ की आधुनिक सजावट देखकर दंग हो गया ।

पैसे की माया चारों ओर हाथ पसार खड़ी थी ।

“बाथरूम में जाकर हाथ मुँह धो लो और कपड़े भी बदल डालो !”—जीवन ने कहा ।

एक नौकर ने नम्रतापूर्वक बाथरूम का रास्ता दिखा दिया ।

बाथरूम में घुसा, तो चौंक पड़ा मधुकर । सामने ही एक कमसिन तथा सुन्दर नौकरानी खड़ी थी ।

“आइये !”—उसने नम्र स्वर में मधुकर से कहा—

“आप कौन हैं ?”—पूछा मधुकर ने ।

“यह बाथरूम मेरे जिम्मे है ।”—नौकरानी ने मुस्कराकर कहा—

“मालिक को तेल लगाना, नहलाना मेरा काम है...”

मधुकर को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे जीवन पर माया का भूत पूर्णरूप से सवार हो उठा हो । यों तो वह अपने विद्यार्थी जीवन में भी विलास-प्रिय था । परन्तु यहाँ के रंग-ढंग देखकर मधुकर समझ गया कि जीवन के दिन विलास में ही व्यतीत होते हैं और तभी वह विवाह की आवश्यकता नहीं समझता ।

जहाँ नहलाने और तेल लगाने के लिए सौन्दर्यमयी नौकरानियाँ हों, वहाँ के विलास-वैभव का क्या पूछना ?

“मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?”

युवती नौकरानी ने पूछा ।

“कुछ नहीं ।”—मधुकर बोला—“मैं सब काम स्वयं कर लूँगा । तुम बाहर जा सकती हो...”

नौकरानी बाहर चली गयी । मधुकर ने देखा कि पास ही उसके पहनने के लिए मूल्यवान कपड़े रखे हैं ।

उसने साबुन से हाथ मुँह धोया, पुनः तौलिया से पानी सुखाकर बाहर आया, तो जीवन को अपनी प्रतीक्षा करते पाया ।

“अरे यह क्या !...तुमने कपड़े नहीं बदले ?”—

जीवन आश्चर्य से पूछा ।

“क्या होंगे बदल कर ? अभी तो यही कपड़े ठीक हैं ।”—लजाते हुए मधुकर ने कहा ।

उसे ऐसा लगा, जैसे वहाँ का अगम वैभव उसकी निर्धनता का उपहास कर रहा हो ।

“बड़े बेहूदे हो तुम !”—जीवन बोला—“मैं कहता हूँ कि जाकर कपड़े बदल डालो, नहीं तो पास बैठने नहीं दूँगा मैं !”

जीवन की झिड़की में एक सच्चे मित्र का प्यार टपक रहा था ।

मधुकर पुनः बाथरूम में जाकर कपड़े बदल आया ।

नौकर ने चाय की ट्रे लाकर मेज पर रख दी । दोनों मित्र मखमली सोफे पर बैठे हुए चाय पीने लगे ।

“एक कप मेरे लिए भी भैया....!”

दरवाजे पर से आवाज आई ।

जीवन ने उधर देखा । बोला—“तू आ गई कंचन !...कब आई ?”

“अभी तो चली आ रही हूँ ।”—कंचन ने कहा ।

“मधुकर !...” जीवन बोला—“यह मेरी बहन कंचन है...”
और मधुकर आश्चर्यपूर्ण भंगिमा से कंचन की ओर देख रहा था ।

वही सौन्दर्य !

वही प्रतिमा !

वही छटा !

जिसे पंजाब मेल के डब्बे में देखकर वह विस्मृत-सा हो उठा था,
जिसके हाव-भाव ने उसके अन्तराल में मधुर गुदगुदी की सृष्टि कर दी
थी, जिसके बिछुड़ने का खयाल ही उसके लिए भयंकर चिन्ता का कारण
बन बैठा था—

वही इस समय खड़ी थी उसके सामने ।

चित्रलिखित-सा बैठा रहा मधुकर । कंचन भी आकर सोफे पर बैठ
गई और ट्रे में से एक प्याला चाय बनाकर पीने लगी ।

“ये तो मधुकर हैं न...” वह बोली—“मैं इनसे मिल चुकी
हूँ...”

“कहाँ ?” चौंक कर जीवन ने प्रश्न किया ।

“इसी ट्रेन से हम दोनों साथ-साथ आये हैं ।”—कंचन ने मधुकर
की ओर मुस्कराहट देखते हुए कहा—“मैंने इनका परिचय पूछा, तो
इन्हें पहचान गई, मगर ये मुझे नहीं पहचान सके...”

“जब तू इन्हें पहचान गई थी, तो साथ क्यों नहीं लाई ?” पूछा
जीवन ने ।

“वही पहले भाग खड़े हुए...मैं तो अभी-अभी आ रही हूँ...”
बोली कंचन ।

“मुझे यदि आपका परिचय मिल जाता तो आप को लेकर ही
आता...” मधुकर ने सकुचाते हुए कहा ।

“भैया !...” कंचन जीवन से बोली—“इन्होंने मुझे टिकट के
रूपये उधार दिये हैं...”

“टिकट के रूपये !...”

“हाँ मैया ! सच कहतो हूँ, मैं बिना टिकट के ही आ रही थी, तो एक चेकर ने पकड़ लिया और आपने मेरे टिकट के रुपये दे दिये...”

कंचन शरारती हँसी हँस रही थी और नेत्रों के कोरों से मधुकर की ओर देख रही थी ।

“क्यों मधुकर ! तुम तो अपने को बहुत गरीब बनते हो—यह उधार देने का रोजगार कब से शुरू किया...” हँसकर बोला जीवन । सिकुचा गया मधुकर ।

“और क्यों रे कंचन !”—जीवन ने कंचन से प्रश्न किया “तेरे रुपये सब हुए क्या, जो तूने मधुकर से उधार लिए ?”

“क्या बताऊँ मैया !”—बनावटी संजीदगी से बोली कंचन—“रुपये तो सब लखनऊ में ही सफा हो चुके थे और जो कुछ बचे थे, वे कानपुर की भेंट चढ़ गये ।”

“तेरे सर चढ़ गये...” झिड़ककर बोला जीवन—“देखा न, इस नालायक लड़की का !...रुपये धूल में फँकती चलती है । जरा भी कमखर्ची नहीं । अक्ल होती, तब रुपये का मूल्य समझती...”

“तुम्हीं बहुत रुपये का मूल्य समझते हो...”

“चुप रह, नहीं तो मार बैटूँ गा...जाते समय सात सौ रुपये लेकर गई थी और सब रास्ते में फेंक आई...क्या-क्या लाई है, मुझे दिखा...देखूँ तो सही ।”

“मैं नहीं दिखाती” कंचन पुनः कर बोली—“मारोगे तुम मैया, कोई ज्यादा चीजें थोड़े ही खरीदी हैं...”

“क्या-क्या खरीदा है, बोल !”—पूछा जीवन ने ।

“दस साड़ियाँ, तीन ब्लाउज, सात पेटी कोट, पाँच सैन्डल, एक दर्जन अफगान स्नो, एक दर्जन कामनियाँ और दो सेट सोने की चूड़ियाँ और इयरिङ्ग—बस यही तो खरीदा है.....”

“इतना सब क्या करेगी—खायेगी क्या ! घर में तो भरी पड़ी हैं चीजें, अजीब लड़की है...”

“एक चीज तुम्हारे लिए भी लाई है भैया !” कंचन ने कहा ।

“क्या लाई है ?—”

“कंधी !....” उत्तर दिया कंचन ने ।

तो मधुकर और जीवन ठठाकर हँस पड़े ।

बोला जीवन—“देखा न मधुकर ! कितनी शैतान लड़की है यह । अपने लिये दुनिया भर का सामान खरीद लाई और मेरे लिये केवल कंधी...”

“तुम तो मुझे ही डांटते हो भैया !”—कंचन बोली—“कंधी तुम्हारी टूट गई थी, इसलिये सोचा लेती चली—उल्टे यह डांट फटकार...”

“अच्छा-अच्छा, रहने दे अपना भाषण !...” जीवन ने कहा—“मैं जरा कारखाने जाता हूँ—तब-तक मधुकर को खिलाना पिलाना । जरा भी शरारत करेगी, तो मार खायेगी...हाँ !...”

जीवन चला गया, तो कंचन के मुख पर गम्भीरता छा गई, ठीक वैसी ही गम्भीरता, जैसी कि मधुकर ने रेल में देखी थी ।

मधुकर इन दोनों भाई-बहन के स्निग्ध प्रेम तथा मधुर झगड़े को देखकर अत्यन्त प्रसन्न था और उसका हृदय तो पहले ही कंचन के पहलू में जा बैठा था ।

कञ्चन के अन्तरस्थल में भी उथल-पुथल मची थी और उसे ऐसा लग रहा था, जैसे वह अनजान में ही कहीं अपना दिल खो आई है ।

कुछ देर तक तो सन्नाटा रहा ।

फिर मधुकर ने पूछा—“आप पढ़ती हैं ?”

“अब तो नहीं पढ़ती—इसी साल हाई स्कूल पास करके छोड़ा है।”—कञ्चन ने सलज्ज भाव से कहा ।

मधुकर देख रहा था कि जो कंचन अपने भैया के रहने पर पूर्णरूप से चंचल प्रतीत होती थी, वही अब छुई-मुई-सी सिकुड़ी जा रही है।

“वह फोटो आपका ही है न ?”—मधुकर ने दीवाल पर टंगे हुये चित्र की ओर संकेत करके पूछा।

कंचन का हृदय न जाने क्यों घड़क रहा था, इतनी घबड़ाहट उसे कभी नहीं हुई थी। उसने छोटा सा उत्तर दे दिया—“जी हाँ !”

“पोज तो अत्यन्त सुन्दर है...” बोल उठा मधुकर।

“.....”

कंचन का मुख जैसे अबीर-सा लाल हो उठा। पसीने-पसीने हो गई वह, अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर।

दोनों एक ही सोफे पर बैठे थे, एक दूसरे के एकदम पास।

एकाएक मधुकर की अगुलियाँ कंचन के हाथ से छू गईं तो सिहर उठा कंचन का सारा शरीर, मगर उसने अपना हाथ हटाया नहीं।

एक क्षण तक दोनों उस स्पर्श का आनन्द लेते रहे। कंचन के लिये यह सर्वथा मादक अनुभव था। वह भूलती जा रही थी, अपने को।

“आप चुप क्यों हो गईं ?...” मधुकर ने एकटक उसके मदभरे नयनों की मदिरा पीते हुए कहा।

चौंक पड़ी कंचन ! बोली—“क्षमा कीजियेगा...मैं एक बात सोचने लगी थी...”

“आपने तो मुझे गहरा धोखा दिया था—” मधुकर बोला, “रेल पर ही परिचय दे देतीं, तो कितना अच्छा होता। हम दोनों एक दूसरे के और निकट आ जाते...”

“अब भी तो निकट ही हैं, दूर थोड़े ही हैं।”—धीरे से कहा कंचन ने—“और वह तो धोखा नहीं था...धोखा तो मर्द देते हैं...”

“जी नहीं, औरतें भी कभी-कभी...” बीचही में बोल उठा मधुकर।

“आप मुझे कभी ऐसा न पायेंगे...”

“तुम भी मुझे कभी ऐसा न पाओगी कंचन !”

आवेशपूर्ण भंगिमा से मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ लिया । बड़ी देर तक उसके सुकोमल हाथों को सहलाता रहा । कंचन बेहोश सी बैठी रही ।

यह उसका आत्मसमर्पण था ।



सबेरा हुआ, तो ऊँघा हँस पड़ी । कुलबेरा की पंखड़ियाँ स्वच्छ जल पर छितरा गईं । ठंडी हवा के भोंके सोये हुए लोगों को गुदगुदाने लगे । चिड़ियाँ प्रातः जागरण का मधुर सन्देश सुनाती हुई उड़ चलीं ।

कंचन की नींद खुली, तो उठकर बाहरी कमरे में आई । देखा, मधुकर पहले ही से जाग चुका था और एक बड़े से चित्र के पास खड़ा हुआ उसे ध्यानपूर्वक देख रहा था ।

वह चित्र कंचन का था ।

कंचन भीतर चली आई । पूछा उसने—“क्या देख रहे हैं आप...”

मधुकर संकुचित सा हो उठा । चौंककर बोला—“कुछ नहीं, यह चित्र देख रहा था—यह तो तुम्हारा चित्र है न ?...”

“शायद....” सोफे पर बैठती हुई कंचन ने कहा ।

“पर बताओ....भी !” मधुकर भी आकर सोफे पर बैठ गया ।

“क्या आप मेरी सूरत भी पहचान नहीं सकते ?” कंचन बोली—
“कल रात मैं भी आपने यह प्रश्न किया था और आज फिर वही बात पूछ रहे हैं...”

“मैं भ्रम में पड़ गया हूँ कंचन !”—मधुकर ने कहा ।

“कैसा भ्रम !”

“सोचता हूँ कि यह तुम्हारा चित्र है या चाँद का...ऐसा मनोहर चित्र मैंने कभी नहीं देखा था...”

“शायद आपने कभी देखने का प्रयत्न ही नहीं किया था, नहीं तो दुनियाँ में एक से एक चित्र हैं—”

कंचन के मदभरे नयनों ने भौंह की कमान पर एक कारी तीर चढ़ाया और मधुकर का दिल घायल पंखी की तरह तड़प उठा, उस तीर की चोट खाकर ।

“जो भी बात हो—” मधुकर ने कहा—“मगर वास्तव में वह चित्र बहुत सुन्दर है...”

“आपको पसन्द आया !...” बोली कंचन ।

उसके कपोल लजा से गुलाबी हो रहे थे । नेत्र-कोटरों में मदिरा झलक आयी थी । वृक्षस्थल-तोत्र घड़कों के साथ उठ-बैठ रहे थे ।

“बहुत पसन्द आया है यह मुझे...” कहा मधुकर ने ।

“तो उठाकर जेब में रख लीजिये...”

कंचन की आँखों में लजायुक्त मुद्रा के साथ शोखी अठखेलियाँ कर रही थी ।

“चित्र बहुत बड़ा है, जेब में आ नहीं सकता....” बोला मधुकर...
“हाँ दिल में रख सकता हूँ इसे...या आँखों की पुतलियों में बन्द करके अपनी दुनिया बसा सकता हूँ ।”

“.....”

चुप रही कंचन ।

मधुकर की बातों ने, आज जीवन में पहली बार उसे यौवन की मादकता का ज्ञान कराया था । बड़ी अच्छी लग रही थीं उसे, वे मधुर बातें ।

उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके शरीर में उष्णता लहरा उठी

हो, जैसे उसके चारों ओर शराबी वातावरण उपस्थित हो गया हो और वह मदहोश-सी उसी में डूब उतरा रही हो ।

उसने मधुकर की ओर देखा, तो तुरन्त ही सिहर कर आँखें नीची कर लीं ।

मधुकर एकटक उसके कपोलों पर खिजे हुए गुलाब को देख रहा था । उसकी पुतलियाँ उसे यौवन का मधुर आमन्त्रण दे रही थीं । उसका उल्लसित शरीर न जाने कब कंचन के मादक अवयव के सम्पर्क में आ रहा, यह कंचन न जान सकी ।

जब मधुकर की एक गर्म साँस, कंचन के अधरों पर लोट गई तो वह चौंकी । परिस्थिति का ज्ञान हो आया उसे । वह उठ खड़ी हुई । बोली—“भैया अभी तक सोये हैं । उन्हें जगा दूँ...”

मधुकर भी चैतन्य हो गया था ।

“क्या अब तक सोये ही हैं !—” उसने कहा—“चलो, मैं भी चलता हूँ...अजीब आलसी आदमी है...”

दोनों जीवन के कमरे में आये । देखा, जीवन लिहाफ में मुँह छिपाये मीठी नोंद में मस्त था ।

मधुकर ने उसे पुकारा, परन्तु वह जगा नहीं ।

तो कंचन ने मेज पर से टाइमपीस उठाकर उसका अलार्म बजा दिया । तेज घंटी की आवाज से कमरा गूँज उठा ।

“क्यों रे कंचन !—” जीवन ने हिलाफ में से थोड़ा-सा मुँह निकाल कर कहा—“सुबह-सुबह क्या तूफान मचा रखा है ! बन्द कर अलार्म ।...”

और तब उसने पुनः लिहाफ में अपना मुँह बन्द कर लिया ।

अलार्म बजता ही रहा, तो जीवन लिहाफ के भीतर से ही बोला—

“कहता हूँ अलार्म बन्द कर दे । नहीं तो उठकर कान ऐंठ दूँगा...”

“अरे भाई ! उठो सबेरा हो गया...” मधुकर ने कहा ।

“तू भी मधुकर ! क्या कम शैतान थोड़े ही है, सुबह के चार बजे

नहीं कि तू मुर्गे की तरह बांग देने आ पहुँचा...जाकर नाश्ता-पानी करो, मैं अभी आता हूँ...जाओ...” जीवन बोला ।

“बिना तुम्हारे मैं नाश्ता नहीं करूँगा—उठो तुम—” मधुकर ने जीवन का लिहाफ पकड़कर खींच लिया ।

खिसिया कर बोला जीवन—“लो ! अब तक तो एक ही आफत थी अब दो हो गये...। मधुकर ! जाओ मेरी तुमसे नहीं निभेगी । अपना बोरिया-बस्ता उठाकर चल दो इसी गाड़ी से...”

“उठते हो या पानी मँगाऊँ ?” मधुकर बोला ।

“ठहरो भाई ठहरो !....” चौककर उठ बैठा जीवन—“सुबह-सुबह किस बेहूदी चीज का नाम ले रहे हो, तुम लोग मुझे सोने थोड़े ही दोगे...”

आधा घंटे बाद दोनों मित्र नाश्ते की मेज के पास आ बैठे, कंचन ने चाय की ट्रे और बिस्कुट लाकर रख दिया ।

तीनों चाय पीने लगे ।

“वह तूने क्या छिपा रखा है कंचन !” जीवन ने पूछा ।

“यह तो आमलेट है भैया !....” कंचन ने कहा ।

“वाह ! इमें बिस्कुट दे दिया और तू आमलेट खा रही है !...”

“क्या करूँ—दो ही आमलेट बन सके—”

“तो दोनों तू ही खायेगी !”—जीवन बोला—“ला इधर सबको बाँट...”

लपककर जीवन ने कंचन से आमलेट की तश्तरी छीन ली और तब थोड़ा-थोड़ा सबको बाँट दिया ।

ग्यारह बजे जीवन कारखाने चला गया और तब उस विशाल भवन में केवल दो पंछी रह गये ।

दो पंछी !

जो दुनिया के बन्धनों से परे एक अलग बसेरा बसाने की धुन में थे—

जो अपने हृदय के तिनके चुन-चुनकर एक अनोखा नीड़ तैयार करना चाहते थे—

जो प्रेम के झकोरों का मधुर सहारा पाकर, बादलों से ऊपर उड़ जाना चाहते थे—

“चलिये ! बाग में चला जाय !”—कंचन ने कहा ।

“चलो !....” भूला-भूला मधुकर बोला ।

जीवन के विशाल मकान के पीछे, एक सुन्दर बाग था । फल और फूलों के पौधे बहुतायत से थे । कुज और गुमटियाँ बनी थीं । एक छोटा-सा पक्का तालाब भी था ! जिसमें कुलबेरा के फूल हँस रहे थे ।

कंचन और मधुकर दोनों बाग में घूमने लगे । वहाँ की छुटा देख-कर उन दोनों का यौवन प्रवल उन्माद से भर आया ।

“कंचन !...”

मुग्ध वाणी में धीरे से पुकारा मधुकर ने ।

“कहिये !...”

कंचन का शरीर मधुकर के निकट आ रहा ।

मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ लिया ।

पूछा—“तेरना जानती हो तुम !...”

“हाँ...” छोटा-सा उत्तर दिया कंचन ने ।

“तो चलो—तैरें हम तुम...” मधुकर ने प्रस्ताव पेश किया ।

“चलिये !...”

और प्रस्ताव स्वीकृत हो गया ।

दोनों छोटे से तालाब की खूबसूरत सीढ़ियाँ उतरने लगे एक दूसरे से सटकर नीचे उतर रहे थे दोनों, कि एकाएक कंचन का पैर फिसल पड़ा ।

कदाचित् मधुर बातचीत से कंचन का शरीर सिहर उठा था और उसके पैर आवेश में कांप रहे थे—यही था फिसल पड़ने का कारण ।

पैर फिसल पड़ने के कारण कंचन अवश्य गिर पड़ती, यदि मधुकर के कम्पित शार्थों ने उसकी देह को पकड़ न लिया होता ।

उनके लिए यह प्रथम अवसर था, जबकि उनके शरीर ऐसी मादक परिस्थिति में एक दूसरे सम्पर्क में आये थे ।

बड़ी देर तक वे दोनों उस निर्जन तालाब पर एक दूसरे से आबद्ध खड़े रहे और एक दूसरे को अपने हृदय की धड़कन सुनाते रहे ।

चौक पड़े वे, सामने के एक पेड़ पर से कोयल की कूक सुनकर और तब एक दूसरे से अलग होकर तालाब के किनारे आये ।

सूक्ष्म कपड़े पहने हुए वे दोनों तालाब में कूद पड़े और तैरने लगे । तालाब के स्वच्छ वनस्थल पर कुलबेरा के पत्ते फैले हुए थे और उनके डंठलों ने पानी के भीतर एक जाल-सा बना रखा था ।

और उसी जाल में एकाएक कंचन के पैर जा फँसे ! उसने कोशिश की निकालने की, मगर रुफल न हो सकी ।

“क्या है ?” पूछा मधुकर ने ।

“कुलबेरा ने मुझे पकड़ लिया है...” कंचन मुस्कुरा कर बोली ।

“क्या माँगता है ?”—हँसकर पूछा मधुकर ने ।

“यह तो आप ही पूछिये, आकर....”

मधुकर कंचन के पास आया । उसका सुन्दर शरीर अपनी गोद में लेकर, उसके पैर के बन्धन छुड़ा दिये और तब एक कुंज में आकर बातें करने लगे दोनों ।

“एक बात बताओगी कंचन ?—”

“पूछिये !...” कंचन ने मधुकर की आँखों में अपने नेत्रों की मदिरा भर दी ।

“यह सब तुम्हें पसन्द है ?”

“क्या !...” कंचन ने अनजान बनकर पूछा ।

“यही सब...!”

“यही सब क्या !....”

“अनजान न बनो कंचन !”—मधुकर ने कहा—“तुम सब समझती हो ।”

“मैं कुछ नहीं समझती—” कंचन का कलेजा धड़क रहा था—
“आप ही समझा दीजिये...”

“समझा दूँ !...”

“जी हाँ...” मादक उत्तर दिया कंचन ने ।

मधुकर अपनी बेकली सम्हाल न सका । उसके उल्लसित हाथों ने आगे बढ़कर कंचन को समेट लिया । उसके होंठ कंचन के अधरों पर लोट पड़े ।

कंचन को ऐसा लगा, जैसे किसी ने मदिरा का प्याला भर कर उसके होठों से लगा दिया हो । जैसे मधुकर ने अपने अधरों से उसे बेहोशी की दवा पिला दी हो ।



दिन और रात की गोरी और श्यामल परियाँ, संसार पर अपने पंख फैलाती हुई उड़ती चली गयीं । कंचन और मधुकर के हृदय दूध पानी की तरह एक हो गये ।

कितने ही दिन, सघन कुंज में एक दूसरे के वक्षस्थल को अपने हृदय की धड़कन सुनाया था उन्होंने—

कितनी ही रात, ऊनी लिहाफ ने उनके शरीरों को अपने में समेट कर, उनके धड़कते हुए प्रेम पर तृप्ति की बूँदें डाली थीं ।

जीवन तो व्यस्त रहता था, दिन को अपने रोजगार में और रात

सो उसे मधुकर और कंचन के तड़पते हुए दिल का पता न लग सका । वह तो प्रसन्न था कि मधुकर कंचन के साथ रहता है, अन्यथा उसके कार्य में बाधा पड़ती ।

हाँ !

तो एक रात—

आसमान पर बादलों की होड़ मच गई । बिजली कड़की तो ऐसा लगा जैसे सारा आकाश उस हवेली पर गिर पड़ा हो, पानी बरसने की आवाज तेजी से बढ़ गई ।

चौक कर कंचन पलंग पर से उठ बैठी । बादलों की गरज, बिजली की चमक और मूसलाधार पानी का हर-हर शब्द सुनकर उसका कलेजा काँप उठा । उसे भय लगने लगा ।

वह अपने कमरे में अकेली जो थी !

अपने भैया के कमरे में आई, तो देखा कि वे अब तक लौटे नहीं हैं । उनकी पलंग अकेली पड़ी है—रोती हुई ।

आधी रात हो आई थी । कंचन धड़कते हुए कलेजे से मधुकर के दरवाजे पर आ खड़ी हुई और धीरे से दरवाजा खोलकर भीतर आ रही ।

मधुकर की नोंद उचट गई थी । कंचन को देखकर वह हर्षित हुआ ।

“कञ्चन ! तुम !....” बोला वह ।

“जी हाँ !...” कहा कंचन ने ।

“क्या बात है ?”

“क्या बताऊँ !....भैया अभी तक नहीं आये...”

“अब वे आज रात नहीं आयेंगे कञ्चन !...ऐसे आँधी पानी में वे नहीं आ सकते...आओ बैठो...”

मधुकर ने कञ्चन का हाथ पकड़ कर पलंग पर बैठा लिया ।

“कहाँ होंगे वे !...” पूछा कंचन ने भयभीत स्वर में ।

“उनकी चिन्ता मत करो तुम !”—बोला मधुकर—“इस समय वे किसी रंगशाला में पड़े होंगे...”

“क्या कहते हैं आप !”

“ठीक कह रहा हूँ कंचन !...आज का यह मौसम अकेले रहने योग्य नहीं है...अकेले रहने से तो डर लगने लगता है।”

मधुकर के नेत्र अपनी अगम प्यास लिए, कंचन की आँखों से जा मिले।

“डर तो मुझे भी लगा, इसलिए मैया के कमरे में गई थी। वे नहीं मिले तब आप के पास चली आई...” कंचन ने कहा।

उस समय---

कंचन के शरीर का सारा बोझ मधुकर के सीने पर आ रहा और मधुकर को न जाने कैसी मदहोशी का आभास मिलने लगा।

आधीरात !

मुनसान मकान !

गरजते हुए बादल !

कड़कती हुई बिजली !

मूसलाधार पानी !

अरमान भरे हृदय और सिसकती हुई जवानी।

“कञ्चन !...” पुकारा मधुकर ने।

“कहिए !...” कंचन की आँखें आधी बन्द थीं आधी खुली। यौवन भार सम्हालना, शायद कोमल पलकों के लिए मुश्किल था।

“डर लग रहा है न ?—” मधुकर ने पूछा।

“हाँ !...” उत्तर दिया कंचन ने।

“एक बात कहूँ, मानोगी ?—”

“हूँ, कहो...”

कंचन के इन वाक्यों में जा आत्मसमर्पण का प्रबल भाव था, वह मधुकर से छिपा न था।

उसने कंचन की आँखों में उमड़ी हुई मदिरा देखी—
काली पुतलियों में यौवन का मधु आवाहन देखा—
उठती-बैठती हुई छातियों में जवानी की उथल-पुथल देखा ।
और वह भूल गया अपने आप को । अन्धी जवानी, आवेश का
उफ़ान पाकर तड़फड़ा उठी ।

“आओ—इधर आओ कंचन !....” एक भँवरे का आमन्त्रण
था यह, कली का पराग लूटने के लिए ।

“.....”

सकुचाई सिमटी-सी कली कुछ न बोल पाई ।

और तब निर्मोही भँवरा मदहोश कली के चारो ओर मँडराने लगा ।
कली, उसके गुनगुन सुरीले स्वर को सुनकर जैसे बेहोश-सी हो गई ।
अपने आप तक का ज्ञान न रहा उसे ।

वह भँवरे के स्वर पर मदमत्त हो भूमने लगी ।

मधुकर ने लपककर कंचन को लिहाफ के अन्दर खींच लिया । दो
जवानियाँ घुलमिल कर एक हो गयीं ।

उसी समय आकाश पर जोरों से बिजली कड़की ।

मधुकर ने कंचन को कसकर समेट लिया । कंचन के अंग-अंग टूट
कर ढोले हो रहे थे । उसे तन-बदन का होश न था । यह अनुभव उसके
लिए नवीन एवं मादक था ।

भँवरा बेहोश कली पर जा बैठा ।

और दूसरे ही क्षण कोमल कली का पराग लुट गया । अपनी चिर-
संचित यौवन-निधि लुटाकर अस्त-व्यस्त-सी हो उठी वह कोमल कली ।
पंखुडिया बिखर गयीं ।

कंचन चेतनाहीन हो रही थी । मधुकर ने प्यार से उसे थपथपाया,
तो वह वास्तविक संसार में आई ।

अपनी दुर्दशा देखकर फफक-फफक कर रो उठी वह । उसे महान्
आत्मग्लानि हो रही थी ।

वह सिसकती रही, मधुकर के कलेजे से लगो हुई । मधुकर ने उसे और पास खींचकर कहा—“कंचन ! रोतो क्यों हो !....”

“तुमने मुझे लूट लिया मधुकर बाबू !...” बोली कंचन ।

“ऐसा न कहो रानी !...मैं स्वयं लुट गया हूँ...”

“आप मेरे आत्म-समर्पण का मूल्य समझेंगे, निर्मोही बनकर !...”

“यह तुम क्या कहती हो कंचन !....मैं सदा तुम्हारा रहूँगा....”

“ये बहुत पुराने शब्द हैं, जिन्हें हर प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए प्रयोग करता है । कंचन ने सैकड़ों कहानियों में ऐसी बातें पढ़ी हैं ।”

वह सिसकती रही ।



मधुकर और कंचन पर मदहोशी ने कुछ ऐसा रंग जमाया कि वे बेहोश से हो उठे और सारी दुनिया की सुघर भुलाकर एक दूसरे में लीन हो गये ।

दो महीने इस तरह व्यतीत हुए, जैसे दो घण्टे ।

इस बीच जीवन के सुख के लिए सर्वस्व निछावर करने वाली कंचन ने उसे पानी तक के लिये न पूछा ।

और अपनी माँ के लाड़ले बेटे मधुकर ने उसे एक पत्र तक न दिया ।

वह भूल गया था अपनी माँ को और बुढ़िया दादी को भी, जिनके मकान में वे दोनों माँ बेटे निःशुल्क रहा करते थे और जो अपनी आत्मीय न होतै हुए भी ‘अपने’-सा प्यार करती थी ।

इधर मधुकर को अपनी माँ के सख्त बीमार होने के विषय में दो

तीन पत्र मिल चुके थे, परन्तु उनकी अवहेलना कर वह अपने ही रंग में मस्त था ।

उस दिन कंचन और मधुकर बैठे थे, पास-पास सोफे पर । जीवन अपने कारखाने पर था । दोपहर का समय था ।

“कंचन...!”

धीरे से पुकारा मधुकर ने, स्नेहसिक्त वाणी में ।

“कहिए...” लजा का आवरण कपोलों पर डालकर बोली ‘वह’—जो निर्मोही भँवरे के स्वर पर पागल-सी हो झूम उठती थी ।

“तुम आजकल उदास क्यों रहती हो !”—पूछा मधुकर ने—“पहले की चंचलता, वे रस भरी बातें, वे आँखों के इशारे सब न जाने क्या हुए ? अब तो तुम मूर्ति जैसी लगती हो. अटल चुपचाप, निश्चल !... क्या बात है रानी !...”

मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ा, तो लगा जैसे वह हाथ काँप रहा हो !

“बोलो कंचन !...मेरी बातों का उत्तर दो !...” मधुकर ने पुनः प्रश्न किया ।

“क्या उत्तर दूँ आपकी बातों का ।”—लजाकर सिमटी हुई बोली वह—“आप स्वयं समझदार हैं—समझ सकते हैं ..”

चुप हो गई कंचन । मधुकर हँस पड़ा—“ओह ! तुम यह चाहती हो कि हमारा तुम्हारा विवाह जल्द हो जाय...यही न...मगर रानी ! इतनी जल्दी क्या पड़ी है ? फिर भी यदि तुम इसी कारण उदास रहती हो तो मैं किसी दिन जीवन से तुम्हें माँग लूँगा । मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह इनकार न करेगा...”

“मगर इस काम में आप जल्दी कीजिए....” बोली कंचन—“मैं कैसे बताऊँ आपको कि...”

कंचन की जवान पर शब्द आकर के रुक गए । गला फँस गया । मगर मधुकर उसका संकेत न समझ सका ।

आज महीनों में कंचन, मधुकर से विवाह के लिये जल्दी कर रही थी, मगर मधुकर बराबर टालता जा रहा था।

इसलिये नहीं कि वह कंचन को धोखा देना चाहता है, वरन् बात यह थी कि जब-जब वह जीवन के सामने अपने विवाह की बात लेकर जाता था, तो उसकी ज्ञान ही जवाब दे जाती थी, कलेजा धड़कने लगता था।

और परेशानी लिए हुए वह लौट आता था।

मगर वह कंचन की परेशानी से सर्वथा अनभिज्ञ था।

वह क्या जानता था कि उस आँधी-पानी-भरी रात को वह काली करतूत, कंचन के अंचल में सजीव होने जा रही है !

वह क्या जानता था कि उन दोनों का क्षणिक आवेग, कंचन के अन्तराल में एक अनोखे जीव की सृष्टि कर रहा है !

वह क्या जानता था कि उनका वह छुपा हुआ पाप कुछ ही दिनों में एक सुन्दर रूप धारण कर संसार में आने वाला है !

वह क्या जानता था कि जो कार्य, दुनिया की आँखों में धूल भोंक कर किया गया था, स्वयं एक शिशु का रूप धारण कर, दुनिया के सामने उनकी पोल खोलने आ रहा है !

मधुकर यह सब नहीं जानता था।

जानती थी केवल कंचन।

और उसने संकेत द्वारा मधुकर को बताने की चेष्टा की थी, परन्तु वह अनुभवहीन युवक समझ न सका।

इधर लज्जा से कंचन का मुँह इतना कसकर जकड़ा हुआ था कि वह कुछ साफ-साफ बोल ही न सकती थी।

परिस्थिति अन्धकार में ही रही।

उसी अन्धकार में वह 'पाप' दो महीने का रूप धारण कर चुका था। और तब एक दिन कानपुर से मधुकर को मकान मालकिन का, जिसे वह बुढ़िया दादी कहा करता था, एक पत्र मिला।

लिखा था—

वहाँ जाकर तो तू हम सभी को भूल गया । जान पड़ता है वहाँ का हवा-पानी तूझे इतना पसन्द आया, कि तू अपनी दादी और अपनी माँ को भी भूल बैठा । कई पत्र भेजे, जिनका कुछ जवाब न मिला । बच्चा ! यह पत्र देखते ही तुरन्त चले आओ । यदि तुम्हारे हृदय में उस निरीह माँ का कुछ भी प्रेम अवशिष्ट है, तो तुरन्त चल पड़ना । वह इस दुनिया से जाने के पहले एक बार तेरी सूरत, भर आँख, देख लेना चाहती है ! उसकी तबियत अब तब हो रही है । वह माँ है, मरने से पहले अपने निर्मोही बेटे को कलेजे से बाँधना चाहती है । जरूर आना बच्चे !

तुम्हारी दुखिया दादी—

पत्र पढ़कर मधुकर पर जैसे वज्रपात हुआ, दिल धड़क उठा उसका । सोचने लगा वह—

तो क्या उसकी माँ इतनी बीमार है, कि कोई आशा नहीं रह गई है ? क्या अब सचमुच उसके ऊपर से माँ की साया हटने वाली है ?

उफ़ ! वह भी कितना निर्मोही है कि यहाँ यौवन प्रवाह में पड़कर मातृ-प्रेम की स्निग्ध धारा का तिरस्कार कर बैठा ।

‘माँ !...’

रो उठा मधुकर का हृदय । आँखों में आँसुओं का सागर उमड़ पड़ा । गाल भीग गये उसके । लगा, जैसे अब वह माँ को नहीं देख सकेगा ।

कुर्सी पर बैठा था वह, अपनी ग्लानि आँसुओं के रूप में बाहर बहाते हुए । उसी समय कंचन आ गई ।

उसकी दशा देख वह चौंक पड़ी । हाथ से पत्र ले लिया उसने । पढ़ा और तब उसे भी प्रतीत हुआ, जैसे मधुकर निर्मोही है । जो व्यक्ति अपने माँ का दूध भूल सकता है, तो वह कंचन जैसी परायी नारी का प्रेम क्या नहीं भूल सकता !

“घर से पत्र आया है ?”—पूछा कंचन ने ।

“हाँ !...”

“माँ की तबियत बहुत खराब मालूम पड़ती है, तभी तो ऐसा लिखा है...मगर यह दादी कौन है ! क्या आपको दादी...”

“नहीं...” मधुकर बोला—“यह मेरी सगी कोई नहीं हैं। मैं इन्हीं के मकान में लडकपन से ही रहता हूँ। माँ को और मुझे, ये बहुत प्यार करती हैं। अपना सगा भी इतना प्यार नहीं कर सकता...”

“तो आप एक बार जाकर माँ को देख आइये....” कहा कंचन ने।

“अवश्य जाऊँगा—आज ही !”—मधुकर बोला, दृढ़ स्वर में।

“मगर जाने से पहले एक बार मैया से ‘वह’ पूछ लीजिए...”
हिचकिचाते हुए कंचन ने कहा।

“कंचन !...” उसका हाथ पकड़कर बोला मधुकर—“इस समय मेरी दशा शोचनीय है। माँ की बीमारी का समाचार पाकर मुझे बहुत दुःख है। ऐसी दशा में शायद मैं जीवन से कोई बात न कर सकूँ...”

“तब...”

“मैं आज जा रहा हूँ...जल्द ही वापस आकर सारी बातें जीवन से तय कर लूँगा...यदि जल्दी न आ सका, तो पत्र द्वारा ही सब कुछ ठीक कर लूँगा। तुम घबराओ नहीं...”

“न जाने क्यों आपके जाने की बात सुनकर दिल बेचैन हो रहा है !...मैं आप से कैसे बताऊँ कि आपने मेरा सर्वस्व लूटकर मुझे एक अमिट दाग दे दिया है...मैं कहाँ जाऊँगी, क्या करूँगी...”

अब भी नहीं समझा मधुकर। पहेली वह कैसे समझ सकता था।

बोला—“धीरज रखो रानी ! मैं जल्द लौटूँगा....”

उसी समय आ गया जीवन—

तो मधुकर ने सारी बातें उसे बताकर जाने की अनुमति माँगी।

जीवन ने कहा—“तुम्हारी माँ की तबियत खराब है, ऐसी दशा में

तुम्हें कैसे रोक सकता हूँ मैं !...अगर हो सके तो जल्द लौटना, तुम्हारे रहने से कंचन का जी बहला रहता है..”

जीवन ने कितनी यथार्थ बात कही थी !

कंचन ने लज्जा से सर झुका लिया ।

जीवन अनुभवहीन था । उसने प्रत्यक्ष रूप से मधुकर और कंचन का आकर्षण देखा था और वह प्रमत्त भी था । कंचन उसकी लाड़ली बहन थी, वह उसके लिए सब कुछ कर सकता था । उसे हँसाने के लिये तारे भी तोड़ ला सकता था ।

और मधुकर तो उसका अनन्य मित्र ही था ।

उन दोनों की जोड़ी देखकर जीवन फूला न समाता था । उसकी हार्दिक कामना यही थी कि यह युगल जोड़ी शीघ्र ही प्रणयसूत्र में आबद्ध हो जाय ।

मगर इस विषय में वह स्वयं ही बात उठाना नहीं चाहता था, वह चाहता था कि मधुकर इस बात को उठाये ।

परन्तु मधुकर तो था लजीला—बात उठाने में शरमाता था ।

हाँ !

तो उसी दिन मधुकर कानपुर को रवाना हो गया । उसका कलेजा अनिष्ट की आशंका से बार-बार काँप उठता था ।

पंजाब मेल तेजी से भागी जा रही थी और सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में बैठा हुआ मधुकर विचारों में डूब-उतरा रहा था ।

धन-हीन होने पर भी वह सदैव सेकेण्ड-क्लास में ही चलता था । आज वह उस डिब्बे में अकेला था, तो उसे उस दिन की बात याद हो आई, जिस दिन इसी गाड़ी में कंचन को उसने पहले-पहल देखा था ।

एक मादक सिहरन-सी भर उठी उसके रग-रग में । वह कुछ क्षणों तक अपनी माँ की शोचनीय अवस्था का ध्यान भूल गया । डिब्बों की सूनी छत पर तेजी से नाचते हुए पंखे की तरह, उसकी विचारधारा भी नृत्य करने लगी ।

कंचन एक अछूती कली के रूप में उससे मिली थी और आज वह भैंवरा, उस कली का पराग लूटकर कानपुर भागा जा रहा था ।

उसका ध्यान तब भंग हुआ, जब कि गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर आ खड़ी हुई और किसी कोमल कंठ से निकला हुआ स्वर उसके कान में अमृतवर्षा कर उठा—“हलो मिस्टर मधुकर...”

मधुकर ने चौंककर सर घुमाया, देखा सौन्दर्य की एक साक्षात् प्रतिमा खड़ी थी, मुस्कुराते हुए ।

“हलो, मिस कलाकुमारी !...आइये...”

कलाकुमारी मधुकर की सहपाटिनी थी । दोनों एक ही कालेज में पढ़ते थे । घनिष्टता भी काफी थी उन दोनों में और कालेज के मनचले युवकों ने उसकी घनिष्टता पर कीचड़ भी उछाले थे ।

कला का घर कानपुर में ही था ।

वह आकर मधुकर के बगल में बैठ गई ! पूछा—“कहा से आ रहे हो तुम !...”

“मिर्जापुर जीवन से मिलने गया था, वहीं से आ रहा हूँ...” बोला मधुकर—“और तुम कहाँ से आ रही हो !...”

“बम्बई से...”

“ओह ! शायद अपने पिता से मिलने गई थी !”—मधुकर ने कहा ।

“जी हाँ !”—कला बोली—“पत्र आया था उनका, बुलाया था मुझे...”

“किसलिए बुलाया था !”—मधुकर के नेत्र, प्रश्न लिए हुए, कला की बड़ी-बड़ी आँखों से जा मिले—“कोई आवश्यक कार्य था क्या !”

“आवश्यक ही समझो !...” कला ने कहा—“वे चाहते हैं कि अब मैं आगे न पढ़कर, उनके काम में हाथ बटाऊँ...मेरा कोई भाई तो नहीं, कि उनकी सहायता करेगा । और मैं बी० ए० पास कर ही चुकी हूँ, अब आगे पढ़कर क्या करना है...”

“तुम्हारे पिताजी का सागर बैंक लिमिटेड कैसा चल रहा है !...”

“अच्छा चल रहा है—” बोली कला—“अब तो उसकी शाखा पूना में भी खुल गई है...”

“तब तो ठीक है...मगर तुम्हारे पिताजी को कानपुर में ही कोई बैंक खोलना था...मेरी समझ से, घर से उतनी दूर बम्बई में जाकर बसना ठीक तो नहीं...”

मधुकर ने कहा ।

“अब आगे क्या करने का विचार है तुम्हारा !—” मधुकर की बात उड़ाकर, कला एक दूसरा ही प्रश्न पूछ बैठी । “अभी और आगे बढ़ोगे या नहीं !”

“.....”

कुछ बोल न सका मधुकर । अभी तक उसने भविष्य पर कुछ दृष्टि ही न डाली थी ।

उसने कला की ओर देखा शून्य दृष्टि से !

और उसे लगा, जैसे कला की आँखों में आज ‘कुछ’ ऐसा आकर्षण है, जैसा और पहले कभी न था ।

आज पहले-पहल मधुकर के हृदय में ऐसा भाव आया था ।

आज से पहले—

अनेकों बार उसने कला के साथ एकान्त में घण्टों बैठकर वार्तालाप किया है—

अनेकों बार दोनों ने आधी-आधी रात तक बैठकर लाजिक पढ़ी है—पॉलिटिक्स पर दोनों सैकड़ों बार झगड़ते-झगड़ते, छीना-झपटी तक कर उठे हैं—

मगर तब मधुकर के हृदय में कला के प्रति कभी ये भाव नहीं आये थे—

और न तो कला के ही नेत्रों में ‘वह’ दिखाई पड़ा था, जो ‘कुछ’ आज दृष्टिगोचर हो रहा था ।

“तुमने मेरी बातों का उत्तर नहीं दिया ?”—कला बोली ।

और मधुकर को लगा, जैसे कला का स्वर आवश्यकता से अधिक नम्र हो उठा हो और वाणी की स्थिरता में कुछ कम्पन आ गया हो ।

एक क्षण तक तो वह कला की काली पुतलियों की भाषा पढ़ता रहा, फिर बोला—“क्या बताऊँ कला ! अभी तक तो कुछ निश्चय नहीं कर पाया हूँ...”

“कुछ न कुछ निश्चय तो करना ही पड़ेगा !...” कला ने कहा ।

“क्या निश्चय करूँ ?—आगे पढ़ सकना तो अब असम्भव है...”

“क्यों ?...”

“अर्थाभाव !”—बोला मधुकर ।

“अर्थाभाव ?”—चौंककर बोली कला—“ऐसा क्यों कहते हो मधुकर ! यह न भूलो कि मैं तुम्हारे साथ हूँ...”

कला ने ये वाक्य कुछ ऐसे ढंग से कहे थे कि मधुकर विचलित हो उठा । उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से कला की ओर देखा ।

न जाने क्यों कला के कपोलों पर लालिमा दौड़ गई ।

यह सच था कि कला ने आज तक मधुकर पर कितने ही अहसान किये थे और उन अहसानों से मधुकर का हृदय दबा था ।

पिछले चार साल से कला और मधुकर साथ-साथ एक ही कालेज में पढ़ते आ रहे थे ।

इस बीच कला ने उसे क्या-क्या सहायता दी, शायद मधुकर भी इन बातों को गिनती न कर सका ।

उसे रुपये पैसे, पुस्तकें तता कपड़े—किसी बात का अभाव नहीं होने दिया कला ने ।

उस भोली युवती की, न जाने कैसी सहानुभूति थी मधुकर पर ।

“ऐसी बातें तुम क्यों सोचते हो मधुकर ?”—कला ने मधुकर का हाथ पकड़ लिया । मधुकर का शरीर झनझना उठा —“क्या हमारी

दोस्ती का यही निष्कर्ष निकाला तुमने...अफसोस कि तुम इतने दिन से साथ रहने पर भी मुझे समझ न सके...”

“कला !...” मधुकर ने कहा—“मेरे कहने का तात्पर्य तुम्हारा हृदय व्यथित करना नहीं था । तुम्हारे उपकारों को भूल जाना मेरे लिए असम्भव है...चाहता हूँ मैं कि यदि तुम्हारे उपकारों का बदला चुका सकूँ, तो...”

“तुम बदला चुकाना चाहते हो ?”—

कला के होठों पर था मधुर हास्य और नेत्रों में था आकर्षक हलाहल ।

“हाँ !...यदि मुझसे हो सके तो...”—मधुकर ने कहा ।

“एक काम करोगे !...”

“कहो !”—बोला मधुकर ।

“तुम मेरे साथ बम्बई चलो...” कला ने कहा—“मैं पिता जी से कहकर अपने बैंक में तुम्हें नौकरी दिलवा दूँगी...मैं भी अब वहीं जाकर रहूँगी । इस तरह हमारी तुम्हारी मित्रता...”

“कला !...”

मधुकर जरा-सा खिसककर कला के एक दम पास आ रहा ।

“कहो !...” बोली कला ।

“तुम उपकार पर उपकार करके मुझे एक दम से दबा देना चाहती हो...एक लुद्र प्राणी के प्रति तुम्हारे हृदय में इतनी ममता क्यों !....”

“किसी के हृदय में पैठकर कोई देखे, तब ममता का कारण मालूम हो !...”

धीरे से बोली कला ।

और न जाने कब उसका सर मधुकर के कंधे से आ लगा ।

मधुकर सोचते हुए बोला—“इसमें मेरी माँ के अनुमति की आवश्यकता है । यदि उनकी आज्ञा मिल गई, तो मैं अवश्य तुम्हारे साथ बम्बई चलाँगा कला !”

मधुकर के हृदय में मानसिक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था । कला के प्रति

उसकी हार्दिक सहानुभूति बहुत पहले से थी और वह सहानुभूति अब तक घनिष्टता का रूप धारण कर चुकी थी, मगर उसके हृदय में कभी इतने संघर्षकारी भाव नहीं आये थे ।

मधुकर को ऐसा लगा, जैसे वह वेगवती घाग में बहा जा रहा हो, जैसे उसे अपनी मानसिक अशांति पर विजय पाना असम्भव हो, जैसे वह कंचन जैसी कोमल बालिका के साथ विश्वासघात कर रहा हो ।

उसने अपना हृदय टटोला, तो वह आश्चर्य-चकित हो उठा ।

उसने देखा उसके हृदय में, कला के लिये केवल सहानुभूति ही नहीं है । आज उसने कला की काली पुतालियों में आकर्षण का जो भाव देखा था, उसने उसे वास्तव में विचलित कर दिया था ।

कानपुर स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तो दोनों स्टेशन पर उतर पड़े । उसी समय उनका एक मित्र मिल गया । नाम था दिनेश । आकृति आकर्षक थी उसकी, मगर हृदय में इलाइल भरा था । कला के रिश्तेदारों में से था । दूर का कोई रिश्ता था ।

यही कारण था कि कला को, मधुकर के प्रति आकर्षित देखकर दिनेश जल-भुन जाता था ।

चाहता वह यह था कि वह कला का रिश्तेदार है, अतः कला पर केवल उसी का अधिकार हो ।

वह नहीं चाहता था कि कला मधुकर जैसे गरीब के पीछे अपनी मधुर आशाओं को मस्तीभूत करे ।

कला और मधुकर को गाड़ी से साथ-साथ उतरते देखकर दिनेश की भवें तन गईं । उसकी आकृति पर घृणा नृत्य करने लगी ।

कला और मधुकर, दोनों ने दिनेश का वह भाव लक्ष्य किया ।

“कहाँ से आ रहे हो तुम लोग ?”—हृदय की असीम घृणा छिपा कर, पूछा दिनेश ने ।

“बम्बई से !”—कला ने कहा ।

“मिर्जापुर से !”—मधुकर बोला ।

“कला ! तुमने तो मुझे कलकत्ता चलने का वादा किया था न !”—दिनेश कला को लक्ष्य कर बोला—“उस दिन तो मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही करता रह गया ।”

“माफ करना दिनेश ।”—कला बोली—“पिताजी का पत्र आने से मुझे तुरन्त बम्बई जाना पड़ा । पिताजी ने अपने बैंक की एक शाखा पूना में भी खोल दी है । कुछ नये क्लर्क की आवश्यकता है । पिताजी ने तुम्हें भी बुलाया है ।”

“मुझे भी बुलाया है—” इर्षित हो बोला दिनेश—“अवश्य चलूँगा मैं । कब चल रही हो !”

“जल्दी ही चलूँगी”—बोली कला—“मधुकर भी चलेंगे...”

“मधुकर !...ये भी चलेंगे !”

दिनेश का हर्ष विलीन हो गया । लाल-लाल आँखों से उसने मधुकर को ओर देखा । मधुकर को ऐसा लगा, जैसे दिनेश अब उसके ऊपर भगटना ही चाहता हो ।

और कालेज में कई बार दिनेश और मधुकर से तडप-भड़प हो भी चुकी थी !

चलते-चलते पृछा कला ने—“तुम अपने किस दोस्त से मिलने गये थे मधुकर !...नाम तो तुमने बताया ही नहीं...”

“बताया तो जीवन से !”—बोला मधुकर ।

“जीवन से...” कला जीवन को अच्छी तरह जानती थी, वह भी उसी कालेज का विद्यार्थी रह चुका था—“क्या कर रहा है आज कल वह...!”

“क्या करेगा !”—मधुकर ने कहा—“पिता के मर जाने पर अब अपना कारबार देख रहा है । बड़ा अमीर आदमी है...”

“अमीर है, तभी तो हम लोगों की सुघ भूल गया और इतने दिन हुये एक पत्र भी न लिखा—” कला बोली ।

“बात यह है कि वह बहुत व्यस्त रहता है...” मधुकर ने जीवन की ओर से सफाई देते हुए कहा—“मुझसे तुम्हारे विषय में पूछ रहा था...”

कुछ सोचकर कला का मुख आरक्त हो उठा ।

वे दिन थे—

जब कि जीवन कला के लिए सब कुछ करने को तैयार था । उसने अपना उबलता हुआ प्रेम इथेलियों पर उड़ेल कर, कला से भिक्षा माँगी थी और कला ने, मधुकर के पीछे दीवानी कला ने, उसे पत्थर की तरह ठुकरा दिया था ।

फिर भी बुरा नहीं माना था जीवन ने । कला के सामने यह प्रतिज्ञा करके, कि विवाह करेगा तो केवल कला से, अन्यथा जीवन भर अविवाहित रहेगा, वह चला गया था ।

और तभी से जीवन का कार्यक्रम अस्त-व्यस्त रहा करता था । वह गलियों की सुन्दरता में लिप्त होकर कला की याद भूलना चाहता था ।

मधुकर जानता था कि जीवन के हृदय में कला का क्या स्थान है, परन्तु वह विवश था । कला को उसने समझाने की कोशिश कई बार की थी, परन्तु असफल रहा । कला के आगे तो केवल मधुकर की प्रतिमा थी ।

कला से विदा लेकर मधुकर अपने घर की ओर चल पड़ा । थोड़ी दूर पर उसका घर था, अतः पैदल ही चला ।

दरवाजे पर भीड़ देखकर वह चौंक पड़ा आँखों के आगे अन्धेरा छा गया, पास ही तैयार रखी हुई बाँस की अरथी देखकर ।

“माँ !...” उसका हृदय करुण चीत्कार कर उठा ।

उसी समय उस घर की मालकिन, बुढ़िया दादी, दौड़ी हुई आई और मधुकर के आगे गिर पड़ी ।

मधुकर ने उसे उठाया । पुकारा—“दादी...”

“आ गया तू !...” रोते-रोते दादी बोली—“आ गया निर्मोही ! बेचारी तेरा नाम रटते-रटते मर गई और तू अब आया है...”

“माँ ।...” चिल्लाकर रो पड़ा मधुकर ।

दौड़ चला आँगन में, जहाँ उसके माँ की जीव रहित काया पड़ी थी।
पिजरा शेष था—पंखी उड़ गया था ।

“माँ ।...”

कहता हुआ मधुकर उस ठठरी पर गिर पड़ा । लोगों ने दौड़कर
उठाया । कुछ ने सान्त्वना दी ।

मगर मधुकर का हृदय जल रहा था । उसने अपना माँ के साथ
अन्याय किया था ?

बेचारी चैन से मर भी न सकी । अपने निर्मोही बेटे को देखने की
अंतिम लालसा हृदय में लपेट चली गई थी वह ।



चकोरी तड़पती हुई स्वाति-जल की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु उसके
उमड़ते-धुमड़ते हुए काले बादल दो बूँद कभी न बरसे ! चकोरी की चोंच
में तृप्ति की बूँदें न पड़ीं ।

तड़पती रही वह ।

अपनी अगम प्यास सहन कर लिया उसने ।

मगर निर्मोही चन्द्र भी तो रुठ गया या उससे । चकोरी के अरमान
भरे हृदय में पिया-मिलन की लालसा थी, उन्माद भरे नयनों में चन्द्र-
दर्शन की तीव्र आकांक्षा थी—

परन्तु वह लालसा, आकांक्षा, अधूरी ही रह गयी ।

कंचन चकोरी बनकर मधुकर के स्वाति बूँद-भरे पत्र की प्रतीक्षा करती
रही और उसके दर्शन की अगम लालसा हृदय में दबाये तड़पती रही ।

पोस्टमैन रोज उसके यहाँ आता, अन्य स्थानों की ढेर की ढेर चिट्ठियाँ दे जाता परन्तु उनमें मधुकर का एक भी पत्र नहीं रहता था ।

भँवरा कली का पराग लूटकर भाग गया था ।

कली सोच रही थी, अब वह निर्मोही नहीं आयेगा ।

कंचन की दशा दिन पर दिन शोचनीय होती जा रही थी । उसका अब किसी काम में जी नहीं लगता था ।

उसका स्वास्थ्य भी अब बालू की भीत के समान हो रहा था ।

अपने पेट में जो पाप छिपाये थी कंचन, उसकी आभा बाहर से झलक रही थी और यह आवश्यक था कि शीघ्र ही उसका विवाह हो जाय, अन्यथा पेट का उभार देखकर सभी सन्देह करने लगेंगे ।

और तब—

कंचन के श्वेताञ्जल में सदैव के लिए काला घब्बा लग जायेगा—

उसके भैया, जीवन का मस्तक लजा से नत हो जायगा—

सभी कंचन पर थूकेंगे ।

कुलटा !

वेहया !

वेश्या !

भय के, आवेग से सिहर उठा कंचन का शरीर । वह बैठी न रह सकी, सोफे पर लेट गई । सिसकियाँ लेने लगी ।

मेज पर रखी हुई चाय ठण्डी हो चली थी, परन्तु कंचन का ध्यान उस ओर न था । वह तो अपनी दुर्दशा पर खून के आँसू रो रही थी ।

उसी समय आ गया जीवन । कंचन को सिसकियाँ लेते हुए देखकर अत्यन्त दुखी हुआ ।

वह कंचन के दुःख को थोड़ा बहुत जानता था और उसने उसके दुःख के कारण का यही अनुमान लगाया था कि मधुकर के चले जाने का कंचन को अत्यन्त शोक है ।

परन्तु कंचन भी कितनी असहिष्णु है—

एक वह है—जीवन !

जिसने कला को अपने हृदय में बिठाया, उसकी पूजा की, मगर वह निर्दयी लडकी उसकी पूजा को, उसके दिल को, उसके अरमानों को कुचल कर चला दी ।

फिर भी जीवन व्यथित न हुआ ।

आज उसके दिल में आग है, परन्तु वह उस आग को भभक पड़ने का अवसर नहीं देता ।

और देखो इस छोटी-सी लडकी कंचन को ।

जैसे रो-रोकर मर जायगी । मधुकर के पीछे एकदम दीवानी हो गयी है । जरा भी धैर्य नहीं उसमें ।

आखिर मधुकर कभी-न-कभी तो आयेगा ही ।

वह इतना निर्मोहो नहीं हो सकता ।

जीवन कंचन के पीछे आकर खड़ा हो गया और उसके सर पर कोमलता-पूर्वक अपने हाथ रख दिये ।

कंचन चौंक पड़ी ।

“मैया !...”

और उसने झटपट अपने आँसू पोंछ लिए और सूखे चेहरे पर व्यर्थ ही कृत्रिम मुस्कुराहट लाने का प्रयत्न किया ।

वह एकान्त में रो सकती थी, एकान्त में सिसक सकती थी, एकान्त में अपना सर फोड़ सकती थी ।

मगर वह यह नहीं चाहती थी कि जीवन उसके नयन-कोटरों में अश्रुविन्दु देखकर दुखी हो ।

“तू रो रही थी कंचन !...” स्निग्ध वाणी में पूछा जीवन ने ।

“नहीं तो मैया !...” बात बनाया कंचन ने, मगर जीवन को विश्वास नहीं हो सका !

बोला वह—“हृदय की व्यथा, आँखों में आँसू बनकर टपक ही पड़ती है। इसे छिपाने से क्या लाभ !...”

“.....”

चुप थी कंचन ! उसकी चोरी जीवन ने पकड़ ली थी।

“आज महीनों से देख रहा हूँ कि तू न जाने कैसी हुई जा रही है ! न ठीक से खाना खाती है और न ठीक से नाश्ता। चेहरे की हँसी न जाने कहाँ खो आई है तू ! लाख बार पूछा मगर तू अपना दुख बताती ही नहीं और मैं देखता हूँ कि तू किसी कष्ट में घुल-घुलकर अपने को नष्ट करने पर तुली हुई है...मुझे बता कंचन ! तुझे क्या दुख है ! तुझे कौन-सी वेदना है !...”

“मुझे कोई दुख, कोई वेदना नहीं है भैया !....”

“ठीक है नादान लड़की !...” हैरान होकर बोला जीवन—“तू मुझसे अपना दुख क्यों बताने लगी !...देखता हूँ तू दिन-पर-दिन विचित्र प्रकृति की हुई जा रही है...जब तक मधुकर था, तब तक बहुत खुश थी तू !...अब वह चला गया तो रो रही है !...क्या मैं इतना भी नहीं समझता पगली !”

“भैया !”

कंचन रो पड़ी, जीवन की गोद में गिरकर। कंचन अभ्रागिन थी। लड़कपन से ही उसने माँ का प्यार नहीं पाया था और पिता भी उसे मरुभूमि में छोड़कर चल बसे थे।

अगर उसने कुछ प्यार पाया है, तो अपने भैया से।

जीवन से !

जिसने उसके सुख शान्ति का सदैव ध्यान रखा, जिसने पहले उसे खिलाया और फिर आप खाया, जिसने उसे माँ की ममता और पिता की मृत्यु का शोक न मालूम होने दिया, जिसने उसे प्यार किया, डाँट फटकार दे-देकर दुलारा, जिसने उससे लड़-झगड़कर, छीना-झपटी कर उसके हृदय में निर्मल आतृ-स्नेह की धारा उमड़ा दी।

कितने सुखी थे वे दोनों ।

सुनहला संसार था उनका !

परन्तु मधुकर ! जैसे उनके जीवन में ज्वाला बनकर आ खड़ा हुआ । उस ज्वाला ने उन दोनों भाई-बहनों की हरी-भरी दुनियाँ जलाकर नष्ट कर दी । बहन का दिल भाई से छीनकर कुचल डाला ।

जीवन कंचन के सर पर ममतापूर्ण हाथ फेरता रहा ।

बोला—“कंचन ! अपने को सम्हाल ले । मधुकर चला गया तो क्या, वह फिर शीघ्र आयेगा । उसके लिये शोक न कर...”

“ऐसा जान पड़ता है कि अब वे कदाचित न आवेंगे भैया....” !
सिसकते हुए बोली कंचन—जीवन ने कहा—“वह विश्वासघात नहीं कर सकता । वह मेरा मित्र है...”

“.....”

कुल्लु न बोली कंचन । वह जीवन को किस तरह अपनी परिस्थिति समझाती ।

किस तरह समझाती उसे यदि उसका शीघ्र ही मधुकर से विवाह न हुआ, तो वह बाध्य होकर आत्महत्या...

ग्लानि का अन्तिम परिणाम आत्महत्या ही तो है ।

“यह क्या !...” चौंकर बोला जीवन—“तूने अभी नाश्ता भी नहीं किया ! और चाय भी ठंडी हो गई !”

“नाश्ते की इच्छा नहीं है भैया !...” दबी आवाज में कंचन ने कहा ।

“वे तेरी इच्छायें सब गयीं कहाँ ? तेरी चंचलता क्या हुई ! तुझ-पर किसने दुष्परापात कर दिया !...”

जीवन ने नौकर को बुलाकर ताजी चाय और आमलेट लाने की आज्ञा दी । तुरन्त ही ये चीजें मेज पर आ उपस्थित हुई ।

जीवन ने अपने हाथों से कंचन को आमलेट खिलाया और चाय

पिलाई । फिर बोला—“मैं कारखाने जा रहा हूँ । ठीक समय पर स्नान कर लेना—मैं खाना खाने के समय आ जाऊँगा...”

और दिन तो जीवन प्रातःकाल का गया गया, अर्द्धरात्रि को लौटता था पता ही न चलता था कि वह कहाँ रहा, और कहाँ खाया ।

परन्तु आज वह ठीक दोपहर को आ गया और कंचन को अपने साथ बिठाकर उसी थाल में खिलाया । उसके इनकार करने पर उसके सरपर प्यार की चपतें लगाई ।

कंचन का हृदय जल रहा था । वह अपने भाई का प्रेम देखकर और भी व्यथित थी । वह देख रही थी कि सदा प्रसन्न रहनेवाला उसका भाई भी आजकल उदास रहने लगा है केवल उसकी शोचनीय दशा देखकर, परन्तु क्या करे कंचन, क्या न करे ।

इस प्रकार एक महीना और बीता और तब एक दिन प्रातःकाल अपनी अगम-वेदना लिये हुए कंचन जीवन के कमरे में आई ।

“मैया !...” धीरे से पुकारा उसने ।

और वह जीवन, जो कभी घंटों जगाये जाने पर भी लिहाफ ताने पड़ा रहता था, झट से उठ बैठा ।

“क्या है ?...है क्या कंचन ?...” पूछा उसने ।

“मेरी तबियत बहुत खराब रही है मैया !...”

“क्या डाक्टर बुलाऊँ...क्या हुआ है तुम्हें ?...”

“कुछ नहीं हुआ है मैया !...डाक्टर की आवश्यकता नहीं...तुम एक पत्र उन्हें आज लिख दो मैया !...”

“क्यों ?”—पूछा जीवन ने ।

“उन्हीं को !...”

“क्या मधुकर को ?...”

“हाँ !...” कहते-कहते लज्जा से गड़ गई कंचन ।

“उसे मैं तीन पत्र भेज चुका हूँ कंचन !...मगर उत्तर किसी का भी नहीं आया...” जीवन बोला—“एक पत्र तुम भी लिख देखो...”

वज्र गिर पड़ा कंचन पर । तीन-तीन पत्र भेजे थे उसने पर उत्तर किसी का भी नहीं आया ? निर्मोही ! निर्दयी !

रो पड़ी कंचन । मेज के पास आ बैठी । काँपती हुई उँगलियों ने कलम उठा ली । मधुकर को पत्र लिखने लगा वह ।

निर्मोही !

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करते-करते महीनों बीत गये, परन्तु तुमने तो सुध ही न ली । वहाँ जाकर न जाने किस मोह में जुट गये कि हमारी याद ही न रही तुम्हें ! मुझे तुमसे यह लिखते हुए अत्यन्त लजा आ रही कि हमारे-तुम्हारे प्रेम का पौधा अब अंकुरित होनेवाला है । ऐसी दशा में तुम्हारा यहाँ शीघ्र आना आवश्यक है ।

इतने निर्मोही न बनो । एक बालिका की लाज पकड़कर उसे ठुकराओ मत ! कहाँ जाऊँगी मैं ? किसको मुँह दिखा सकूँगी ? भैया का क्या होगा ?

सच कहती हूँ, अगर तुमने इस पत्र का जवाब न दिया या स्वयं न आये, तो मैं आत्महत्या कर लूँगी ।

और तुम इस दोष के भागी होगे । तुम कभी चैन न पाओगे । कभी सुख से न सो सकोगे ।

तड़पोगे तुम । रोओगे तुम । मेरा सुख चैन छीननेवाले छलिया, ममता त्यागकर, सुख मोड़ लेनेवाले निर्मोही हाथ मल-मलकर पछता-ओगे तुम !

तुम्हारी—

कंचनमाला ।

पत्र भेज दिया गया । कंचन उत्तर की प्रतिक्षा करती रही । दो सप्ताह व्यतीत हो जाने पर भी, उत्तर न आया, न आया ।

मधुकर की माँ मरी, तो उसके लिये संसार में 'अपना' कोई न रह गया। वह अकेला रह गया, ठोकरें खाने के लिये।

अपने माँ की मृत्यु से अत्यधिक सन्तप्त था। उसने मरते समय अपनी माँ को जो असीम कष्ट दिया था, वह कभी भूल नहीं सकता। उसकी याद दावानल बनकर उसके शरीर का कोना-कोना जला रही थी।

उफ़ ! वह माँ, जिसने अपने जिगर का खून पिला-पिलाकर उसके कोमल शरीर को सुदृढ़ बनाया था, जिसने अनेक रातें स्वयं भूखी सोकर अपने लाल की भर-पेट भोजन कराया था, जिसने समाज की अवहेलना सहन कर-करके उसे बी० ए० तक पढ़ाया था और जो मरते समय अपने निर्मोही बेटे की एक झलक के लिए भी तड़पती रह गई थी।

वही माँ !

आज उसके न रहने पर मधुकर का जीवन अन्धकारपूर्ण हो उठा था। वह भी कितना निर्दयी है, कि अपनी स्नेहमयी माँ को कभी सुख न दे सका। अन्तिम समय में भी उसने उसे तड़पाया, रुलाया, और...

और पिंजरे का वह पंछी अपने जिगर की याद लिए इस संसार से दूर उड़ गया था।

वहाँ !

जहाँ बादलों के सतरंगे घोड़े पर सवार होकर हवा तैरती रहती है।

वहाँ !

जहाँ चाँद और तारे झिलमिल-झिलमिल आँखमिचौनी खेलते रहते हैं।

वहाँ !

जहाँ नीलाकाश से गले मिलने के लिये काली बदलियाँ तड़फड़ाया करती हैं।

वहाँ !

जहाँ बादल और बिजली एक दूसरे का आलिगन करके गरज उठते हैं ।

तड़प रहा था मधुकर ।

आज प्रातःकाल जब उसकी नींद खुली, तो उसने देखा कि उसके गाल आँसुओं से तर हैं । शायद स्वप्न में वह अपने माँ की करुण चीत्कार सुन चुका था ।

वह उठा, तो हिचकियाँ ले रहा था । स्वप्न की घटनायें एक बार उसके नेत्रों के समक्ष नाच उठीं । वह और भी व्यथित हो उठा ।

और दिनों, जब वह प्रातःकाल उठने में जरा भी देर करता, तो उसकी माँ हाथ मुँह धोने के लिए पानी लेकर वहाँ आ पहुँचती और उसे दुनार-पुचकार कर उठाती । मधुकर का हृदय प्रबल मातृ-स्नेह से भर उठता ।

आठ-नौ बज चुके थे, और वह सोया ही था । कौन जगाने वाला था उसे ! कौन उसे प्यार भरे मीठे शब्दों में, देर तक सोये रहने के कारण, फटकार सुनानेवाला था !

“मैं कहती हूँ कि उठ जा बेटा !...सूरज निकल आया है और मेरा चाँद अभी तक सोया ही है...उठ जा लाल !...” उसकी माँ कहती ।

तो वह अनिच्छा पूर्वक, आँखें मुँदे-मुँदे ही उठकर चारपाई पर बैठ जाता ।

“पानी !—” निद्रा के आवेग से झूमता हुआ, मधुकर कहता ।

और उसकी माँ झपटकर लोटे में भरा हुआ पानी लाती । वह आँखें मुँदे-मुँदे, चारपाई पर बैठा हुआ, धीरे-धीरे हाथ धोने लगता ।

तो उसकी माँ, उसकी बन्द आँखों पर पानी का एक करारा छींटा देती और कहती—“मैं कहती हूँ कि आँखें खोल बेटे !...”

कैसे सुखमय दिन थे वे ।

आज भी मधुकर उन सुनहले दिनों की स्मृति भूल नहीं सका है ।

कभी-कभी वह सुबह उठकर, चारपाई पर आँख मूँदे, बैठे-बैठे पुकार उठता है...“पानी !”

और जब उसकी पुकार पर कोई पानी लेकर नहीं आता, उसकी तन्द्रा भंग हो जाती है। उसे ध्यान आता है कि अब माँ इस संसार में न रही।

✓ करुण चीत्कार कर उठता है उसका हृदय।

वह अपने दुःख में लीन हो गया है आजकल। पूर्णतया विक्षिप्त हो उठा है वह ! कंचन का प्रेम, जीवन की मित्रता, कला की सहानुभूति—सब कुछ भूल गया है वह।

केवल माँ की याद है उसे।

सुबह घर से निकलकर किसी पार्क में जा बैठा है वह। उसके आँखों में रहती है आँसू की वूँदें और हृदय में छायी रहती है गहन अन्धकार तोत्र वेदना का प्रतिरूप बनकर।

और इसी प्रकार वह बिना खाये-पीये दिन-दिन भर पार्क में बैठा रहता है। कहीं जाता नहीं, कहीं आता नहीं।

वह चारपाई पर बैठकर आँसू बहा रहा था, कि बुढ़िया दादी कमरे में आई। देखकर मधुकर के धैर्य का बाँध टूट गया। आँखों में मचलते हुए आँसू डुलक पड़े गालों पर।

“मधू !...क्यों रोता है तू ?”—दादी उसके सर पर हाथ सहलाती बोली—“तेरी माँ चली गई तो क्या !....मैं तो हूँ....”

परन्तु ये तो दुनियावालों के समझाने की बातें हैं। मधुकर इतना नादान नहीं। वह अच्छी तरह जानता है कि जो प्यार, जो अपनापन उसे अपनी माँ से मिला था, वह और किसी से नहीं मिल सकता।

इस बूढ़ी दादी में मधुकर के प्रति चाहे जितनी ममता हो, जितना अपनत्व हो, मगर वह उसके लिए पराई हैं। उसकी कोई नहीं है वह, रिश्तेदार भी नहीं, ‘अपनी’ माँ नहीं।

जो आनन्द उसे अपनी माँ के मुख से “मधू” सुनकर मिलता था, वह आनन्द इस बुढ़िया दादी के स्वर में कहाँ !

“दादी !...” मधुकर बोला—“मुझे इस समय न समझाओ। रोने दो मुझे...रोकर जी हलका करने दो...”

“रो-रोकर तो तूने अपनी आँखें सुजा डाली हैं, अब और क्या करने का इरादा है तेरा !”—दादी ने कहा—“चल नाश्ता कर ले। तेरे लिये हलुआ बनाया है...”

“मैं नाश्ता नहीं करूँगा दादी !...”

“क्यों ?...आखिर क्यों तू रो-रोकर अपनी जान दे रहा है ?”—करुण स्वर में बोली दादी—“मुझे देख ! मैं पराई होते हुए भी तुम माँ-बेटों को अपने-सा प्यार करती थी। आड़े वक्त पर मैंने ही तेरी माँ का साथ दिया था और उसे अपने मकान में बेटी-सा रखा था। इस आशा में, कि मधू बड़ा होगा, तो मेरा भी बुढ़ापा कट जायेगा। दो-चार मकान जो मेरे पास हैं वे तेरे ही हैं बेटा ! और मेरे पास अपना कौन बैठा है !...”

“जाओ दादी ! मुझे अकेला छोड़ दो—” मधुकर रुखे स्वर में बोला—“मुझे मीठी-मीठी बातों से भुलावा मैं न डालो...”

मगर दादी न मानी और मधुकर को ले जाकर हलुआ खिला कर ही छोड़ा।

इसी प्रकार जबरदस्ती खिलाने-पिलाने से ही मधुकर आजकल खाता पीता था, अन्यथा उसे कुछ रुचता न था।

नाश्ता करके मधुकर एक पार्क में आ बैठा। प्रातःकाल का समय था। पार्क एकदम सूना था।

बैठा रहा दिनभर पार्क में मधुकर, सूनी, आँखों से हरी घास को देखते हुए।

शाम हुई पार्क में लोग आने-जाने लगे—मगर मधुकर को जैसे कुछ परवाह ही नहीं थी। वह बैठा रहा चुपचाप।

“मधुकर !...”

पीछे से आवाज आई, तो मधुकर ने सर घुमाकर देखा ।

कला खड़ी थी, आँखों में अपार आश्चर्य का भाव भरे ।

कला ने देखा—

उसके सामने एक विचित्र युवक बैठा है । शुष्क आँखें, खड़े-खड़े सर के रूखे बाल, चेहरा मलीन, कमीज फटी तथा मैली—

मधुकर की अवस्था देखकर कला को महान दुःख हुआ ।

“मधुकर !...” कला आकर उसके पास बैठती हुई बोली—“यह तुम्हें क्या हो गया है मधुकर !...”

कला की सहानुभूति, मधुकर के नेत्रों में आँसू बनकर उमड़ो आ रही थी ।

“कला !...”

केवल एक शब्द निकल सका मधुकर के मुख से और कला ने लपक कर प्रेम-पूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया ।

“मुझे बताओ !. तुम ऐसे क्यों हो गये मधुकर !...तुम्हें क्या दुःख है ! तुम्हें क्या कष्ट है ! क्या वेदना है !....”

“कला ! मैं अब नहीं रही....”

फफककर रो पड़ा मधुकर, कला की हथेलियों में अपना मुँह छिपाकर ।

मधुकर !

जिसने आज से सैकड़ों बार पहले कला को अपने दैन्य जीवन के विषय में कण्ठ बातें बताई थीं, अपने अभाव की मार्मिक बातें कही थीं, अपने दुःखदर्द की भावपूर्ण गाथा वर्णन की थी—

मगर मधुकर कभी हताश न हुआ था । उसका स्वर काँपा न था । “कभी उसके नेत्र अश्रुपूर्ण न हुए थे । कभी उसके अघ्रों की मुस्कान न मिटी थी ।

वही मधुकर !

आज निरीह बालक-सा, कला के सामने रो पड़ा ।

कला को भी कम दुख न था—उसके माँ की मृत्यु का समाचार सुनकर । मधुकर के प्रति अगाध प्रेम ने, कला को भी व्यथित कर दिया ।

“माँ मर गई, तो क्या अब दुनियाँ में तुम्हारे लिए कोई न रहा ?”—सिक्त वाणी में बोली कला—“ऐसा सोच-सोचकर अपने को नष्ट न कर दो मधुकर !...”

“वह प्रेम मुझे अब कहाँ मिल सकेगा कला ?”

“तुम चुप रहो...तुम्हें प्यार करनेवालों की दुनिया में कमी नहीं ।”—बोली कला—“कब से यहां बैठे हो ?...”

“सुबह से...”

“कुछ खाया-पिया या नहीं ?...”

“नहीं ! इच्छा नहीं थी...”

“इच्छा नहीं थी, अथवा तुमने अपने को विनष्ट करने का संकल्प कर लिया है ?...तुम यह नहीं सोचते कि तुम क्या कर रहे हो ! तुम्हारी दशा तो एकदम खराब हो जायगी इस तरह से...” कला ने कहा ।

और हाथ पकड़ कर बोली—“उठो...चलो !...”

“कहाँ...” मधुकर ने पूछा, अनजान बनकर—यद्यपि वह जानता था कि कला उसे अपने बँगले पर ले जाना चाहती है ।

“मेरे घर !...” कला ने उत्तर दिया ।

“मुझे क्या करोगी ले जाकर वहाँ कला ?”—

“और यहाँ तुम क्या करोगे बैठे-बैठे !...”

“रोऊँगा !...” भीगी आवाज में बोला मधुकर ।

“और हँसना तुम क्यों नहीं चाहते !...”

“हँसी तो माँ के साथ चली गई कला !...अब केवल रोना ही शेष है...”

कला, मधुकर का हाथ पकड़कर घसीटती हुई सड़क पर आई। एक टैक्सी की ओर मधुकर के साथ उस पर जा बैठी।

कला का बैंगला क्या था, आधुनिक कारीगरी का नमूना था। नवीनतम साज-सजावटों से परिपूर्ण था, हर एक कमरा।

“यहाँ बैठो !...” कला ने मधुकर को एक सोफे पर बैठा दिया।

और वह कमरे से बाहर जाकर उत्तम भोजन तश्तरी में सजा लाई। मधुकर इनकार करता ही रहा, मगर कला के जिद्द के आगे उसकी एक न चली।

भोजन कर चुकने पर दोनों ने साथ-साथ काफी पी और तब कला ने मधुकर को एक सिगरेट जला कर दिया।

पीने लगा मधुकर।

कला के स्निग्ध व्यवहार से मधुकर को कुछ तृप्ति का अनुभव हुआ। थोड़ी देर के लिए उसे कुछ शांति मिली।

कला ने लक्ष्य किया कि अब मधुकर दुनियाँ में एक दम अकेला रह गया है। न कोई साथी न सङ्गी।

और बिना एक साथी के मनुष्य का जीवन अव्यवस्थित हो जाता है।

और आज कल मधुकर को एक साथी की आवश्यकता थी, जो उसके अव्यवस्थित जीवन के साथ चिपक कर उसे क्रमानुसार कार्य करने को बाध्य करे।

जो अपनी सद्बुद्धि से उसकी आँखों के आँसू सुखा सके—

जो उसके करादते हुए दिल को अपने कलेजे से लगाकर उसकी पीड़ा हर ले—

जो उसके शिथिल अवयव में अपना खून डालकर उसे शक्ति-प्रदान करे—

जो उसकी उन्नड़ी हुई दुनियाँ को, सुख शान्ति की वर्षा कर; हरा-भरा कर सके।

मधुकर के लिए सब कुछ कर सकती थी वह !

अपने अरमान भरे दिल को मधुकर के काँपते हुए हाथों पर रख सकती थी—

अपने नयनों की मदिरा मधुकर के शुष्क नेत्रों में भर सकती थी—

अपने जीवन का सुख-चैन मधुकर के पैरों तले बिछा सकती थी ।

मगर मधुकर उदासीन था ।

उदासीन था पहले और आज भी ।

कला के सिसकते हुए हृदय को कभी उसने प्रोत्साहन न दिया था—

कला के नयनों की मदिरा, सुधा समझकर वह पी गया था । और जरा भी मदहोश न हुआ था ।

कला के मदान्ध यौवन का आवेग उसने अतीव शान्ति-पूर्वक समहाला था ।

“आज तक हमेशा तुम अपने मन की करते रहे—” कला बोली—

“कभी मेरा कहना न माना—कभी तुमने मेरी बातों पर ध्यान न दिया—कभी यह न सोचा कि यद कला भी तुम्हारे लिए भाव रखती है...”

“कैसा भाव !...” पूछा मधुकर ने ।

“जिसके हृदय में किसी के टूटे दिल को धड़कन सुनने की शक्ति नहीं—जिसकी आँखों में दूसरे के आँसू देखकर विचलित होने का आभास नहीं—उसे कैसे समझाया जा सकता है...” बोली कला ।

“मैं दुखित और अनाथ हूँ कला !...मुझपर व्यंग की बौछार न करो—”

“तुम अपने को इतना हेय समझते हो !...” कला उसके पर मधुकर के पास खिसक आई—“बोलो तुम कहना मानोगे मेरा !...”

“पिता जी का पुनः पत्र आया है—” बोली कला—“उन्होंने मुझे शीघ्र ही आने की आज्ञा दी है, तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा...”

“.....”

“यहाँ रहकर तुम क्या करोगे—सिवा रोने के...” कला ने मधुकर के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया—“तुम मेरे साथ चलो । तुम्हें किसी बात का कष्ट न होने पायेगा । तुम सदैव मेरे साथ रहना । मैं पिताजी से

“कहकर सब ठीक कर लूँगी—”

“.....”

सोच रहा था मधुकर कि अब, जब वह माँ को भी खोकर दुनियाँ में बे घरबार का एकदम अकेला रह गया है, तो उसे क्या करना चाहिए ?

जीवन ने उसे अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की थी और आज यह कला अपने साथ ले चलने को उत्सुक है ।

क्या करे मधुकर, क्या न करे ?

जीवन के यहाँ रहने से, वह उसका नौकर कहलायेगा, तो कंचन से विवाह करने की लालसा दुराशामात्र रह जायगी, क्योंकि एक नौकर की क्या मजाल कि वह मालिक की बहन से विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित करे ?

कला के साथ रहने से, उसे इन बातों की पूरी सुविधा रहेगी । वह दिल खोलकर जीवन से कंचन को मांग सकेगा और कला ने । उसके साथ इतने उपकार जो किये हैं, उनका बदला भी चुक जायेगा ।

“क्या सोच रहे हो मधुकर !...” कला ने पूछा ।

मधुकर चौंक पड़ा, कला के सुकोमल शरीर का बोझ अपने ऊपर पड़ता देखकर और उसकी एक गर्म सांस का अपने कपोलों पर अनुभव कर ।

“कुछ नहीं...” बोला मधुकर—“यदि तुम मुझे अपने साथ ही ले चलना चाहती हो, तो मैं तैयार हूँ कला !...”

“मधुकर !....”

कला विभोर होकर बोली ।

मधुकर का शरीर एकबारगी ही सिहर उठा—कला के कोमल वक्षस्थल उसकी बाँह चूम रहे थे ।

“तो कब चल रही हो तुम !...” पूछा मधुकर ने ।

“कल ही...” सचेत होकर बोली कला ।

“अच्छा, तो मैं चलूँ—सामान ठीक कर लूँ...और बुढ़िया दादी से भी विदा ले लूँ...” मधुकर ने कहा ।

“जाओ—मैं कल दस बजे तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी !”—कला ने जाते हुए मधुकर पर एक मोहक दृष्टि डाली ।

और मधुकर जड़ पत्थर की तरह भाव लेकर चला गया ।

जिस समय वह अपने घर पहुँचा उस समय दीपक के प्रथम आलोक में सन्ध्या अपना मुख देख चुकी थी ।

आते ही मधुकर अपना सब सामान एकत्रित करने में जुट गया । बुढ़िया दादी आ पहुँची और मधुकर को इस प्रकार व्यस्त देखकर आश्चर्यचकित हो उठी ।

“यह क्या कर रहे हो मधू !...” पूछा दादी ने ।

“सामान इकट्ठा कर रहा हूँ दादी !....” बोला मधुकर ।

“किसलिए !...” भय हुआ बुढ़िया दादी को ।

“कल बम्बई जाऊँगा—नौकरी लग गई है...” कहा मधुकर ने ।

“लात मार ऐसी नौकरी पर बेटा !” बुढ़िया बोली—“चल ! सब सामान ठीक-ठाक से रख दे । मैं तुम्हें कहीं जाने न दूँगी ।”

“यहाँ पड़े-पड़े क्या करूँगा दादी ?”—मधुकर ने कहा—“वहाँ जाकर कुछ पैसे ही कमा लूँगा...”

“पैसों की मेरे पास कमी क्या है !”

“जब कुछ पैसे इकट्ठे हो जायेंगे, तो नौकरी छोड़कर चला आऊँगा और तुम्हारे लिए एक नवेली बहू भी लेता आऊँगा...”

“सच !—” बुढ़िया हर्षित हो बोली—“सच कहता है तू ! तू बहू लायेगा !...तब साफ-साफ क्यों नहीं कहता कि बहू लाने जा रहा है...नाहक बहाना बनाने से क्या लाभ !...”

बुढ़िया दादी बहू लाने की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हो उठी थी ।

“हाँ दादी ! मैं बहू लाने जा रहा हूँ !”—हँसकर बोला मधुकर—

“एक परी-सी बहू लाऊँगा, जो तुम्हारे काम में हाथ बटायेगी, तुम्हारे पैर दाबेगी और अपना कान जरा बचाये रखना, क्योंकि मैं कनकौआ बहू लाऊँगा, जो तुम्हारे कान भी उखाड़ेगी...”

बहुत दिनों बाद आज मधुकर के चेहरे पर मुस्कान देखकर बुढ़िया फूली न समाती। हँसती हुई बोली—“पहले अपने कान को खैर मना ले मधू ! तब कनकौआ बहू लाने का ख्याल कर...”

दोनों हँस पड़े।

“हाँ ! तो मधू ! कब लौट के आयेगा, बहू लेकर ?”—पूछा बुढ़िया ने।

“जल्द लौटूँगा दादी !...”

“बहुत जल्द लौटेगा न !...”

“हाँ !....”

“देख बेटा ! दुनियाँ में मेरा कोई नहीं है। मैं तेरे ही सहारे हूँ। अपने माँ की तरह, मुझे भी धोखा मत देना। निर्मोही न बन जाना मधू !”

“तुम व्यर्थ ही परेशान होती हो दादी !” सच कहता हूँ, बहुत जल्द लौटूँगा और तुम्हें रोज एक पत्र लिखा करूँगा...”

“भला रे भला !”—बुढ़िया बोली—“देखना तो है कि वहाँ जाकर कितने पत्र लिखता है ! बहू तेरे जाते ही, तुझे आँचल में छिपा कैदकर लेगी, तब रोज पत्र लिखने कौन जाता है !”

मधुकर बोली दादी को भुलावा दे रहा था, अन्यथा वह उसे जानें की अनुमति कदापि न देती।

दूसरे दिन मधुकर कला के साथ बम्बई को रवाना हो गया। साथ में दिनेश भी था ! वही दिनेश, जो मधुकर को पहले ही से घृणा की दृष्टि से देखा करता था। कला उसे अपने पिता की आज्ञा से साथ लिये जा रही थी।

मधुकर के जाने के दिन शाम को ही जीवन का पहला पत्र आया

पोस्टमैन ने दरवाजा बन्द देखकर, किवाड़ की दरार से पत्र अन्दर डाल दिया । दूसरा पत्र आया, उसकी भी यही दशा हुई । जीवन का तीसरा पत्र, कंचन का अनुनय-भरा पत्र, सब उस आँधेरी कोठरी में पड़े रो रहे थे और मधुकर था वहाँ से हजारों मील दूर—बम्बई में ।

कंचनमाला अपनी डायरी लिख रही थी । काँपती हुई कलम धीरे-धीरे कागज पर दौड़ रही थी । कंचन का मुख वेदनाच्छन्न था । आँखें शुष्क हो चली थीं, जैसे आँसुओं का अगाध सागर व्यथानल से सूख गया हो ।

यों लिख रही थी वह—

आज तीन महीने हो गये, उस निर्मोही को गये, मगर उस निर्दयी ने एक भी पत्र, एक भी सूचना न भेजी, स्वयं आना तो दूर रहा ।

वे मीठी-मीठी बातें, वे छलनामय वाक्य, वे प्रगाढ़ आलिंगन, वे अघरों के संघर्ष, आज स्वप्न की बातें प्रतीत होती हैं सब ।

सोचकर उन्हें, आज भी हृदय में जैसे कोई गुदगुदी भर देता है । उन्माद-सा छा जाता है मुझपर । बेहाल हो उठती हूँ मैं ।

मगर उस निर्मोही का ध्यान आते ही नेत्र भर आते हैं, व्यथायें उमड़ पड़ती हैं, पीड़ा द्विगुणित हो जाती है, कलेजा अगम वेदना से भर उठता है—हृदय में पुरुषों के प्रति एक क्षणिक घृणा उत्पन्न हो जाती है ।

मैं डर रही हूँ कि कहीं एक क्षणिक घृणा, अन्त में मुझे पुरुषों से बदला लेने पर न उतारू कर दे ! मैं देख रही हूँ कि मेरी यह घृणा, जो

एक दिन सूक्ष्म रूप से अंकुरित हुई थी आज एक छोटे पौधे का रूप धारण कर बैठी है ।

भूली नहीं हूँ—

आज से पाँच महीने पहले की घटना भला कभी भूल सकती हूँ मैं !

वहीं से तो मेरी विनष्टप्राय दुनिया का इतिहास प्रारम्भ होता है ।

यौवन का आवेग जैसे शराब का प्याला है । मदहोश बना देता है मानव को । तभी तो जब पहले-पहल मधुकर को देखा, तो ऐसा लगा जैसे पूरी बोतल गले के नीचे ढाल लिया हो और मदिरा की कालिमा बनकर उतर आया हो ।

दोनों ओर से नशा चढ़ चुका था । दोनों एक दूसरे से मिलने को व्यग्र थे । हृदय में वासना हिलोरें ले रही थी ।

वासना !

जी हाँ ! आजकल के जलते हुये कलेजे में, मदिरा भी आँखों में वासना ही निहित करती है ।

यह आज मैं, अपना सब कुछ गवाँकर, सब कुछ लुटाकर, तब समझ पाई हूँ ।

वह अँधेरी काली रात—आकाश पर छाए हुए मदमत्त बादल और उनके आलिंगन में बेताब, चीखती चिल्लाती बिजली—

डर के मारे मेरा कलेजा काँप उठा था । हृदय में एक मधुर टीस-सी उमड़ पड़ी थी, वर्षा की बूँदों का मादक टप-टप स्वर सुनकर ।

डर ने मुझे मधुकर के पास जाने को बाध्य किया और टीस ने वासना को प्रोत्साहन दिया ।

और तब उस निर्मोही की चलती—फिरती बातों ने मुझे मदिरा पिलाई और मैं अपना सर्वस्व लुटा बैठी ।

क्षणिक आवेग में पड़कर अपना अंग-अंग रख दिया उस निष्ठुर के आगे ।

निर्मोही ! निष्ठुर !

हाँ ! अब तो उसे निर्मोही ही कहना उपयुक्त होगा । लुटेरे ने मेरा सब कुछ लूट लिया और अब मुझे जंजात के बीच छोड़कर न जाने कहाँ जा बसा ?

कई पत्र लिख चुकी हूँ, परन्तु उत्तर किसी का भी नहीं आया । वासना के अन्धे पुतले को तो केवल सौन्दर्य की चाह थी—अछूती कली तोड़ने की अभिलाषा थी ।

और अब, निर्दयतापूर्वक तोड़ी हुई कली को सूँघकर फेंक दिया है उसने, बीच सड़क पर ।

उस वेदर्द का कोई समाचार न पाकर मैं अत्यन्त सन्तप्त हूँ ।

और अब तो मेरे पेट में, पाप का वह पौधा, सजीव हो उठा है । उसकी एक-एक हरकत, उसका हिलना-डुलना मैं अनुभव कर सकती हूँ ।

ऐसा जान पड़ता है, जैसे पेट में हजारों मन का बोझ आ पड़ा हो । स्वास्थ्य भी दिनों दिन गिरता जा रहा है । उल्टी भी कभी-कभी आ जाती है । पेट बीच से कुछ उभर आया है ।

और एक दिन तो मैं सन्न-सी खड़ी रह गई, यह देखकर कि भैया एकटक मेरे उभरे हुए पेट की ओर देख रहे हैं ।

मगर मेरा डर व्यर्थ था । भैया की दृष्टि पेट पर से हटकर मेरी आँखों के चारों ओर छाये हुए काले गड्ढे पर आ पड़ी ।

रुआंसे होकर बोले वे—“कैसी हुई जा रही हैं तू कंचन !...”

“कुछ तो नहीं भैया !...”

मैं अब भी अपने प्यारे भैया से झल कर रही थी । यद्यपि वे यह अनुमान लगा चुके थे कि मैं मधुकर के प्रति आकर्षित हूँ—

परन्तु क्या वे कभी यह जानते थे कि उनकी लाडली बहन, एक निर्मोही के फेर में पड़कर उनके मुँह पर काला धब्बा लगा चुकी है—

और होने जा रही है एक कोमल बच्चे की माँ ।

कितनी विषम परिस्थिति थी मेरी ।

एक दिन भैया जल्दी ही कारखाने से लौट आये। आते ही बोले—
“कंचन ! मेरा सूटकेस जल्दी से ठीक कर दे...”

“क्या करोगे सूटकेस भैया ?” पूछा मैंने।

“बाहर जाना है...”

“कहाँ ?... मुझे बताओ, कहाँ जाओगे तुम ?...” मुझे भैया के बाहर जाने की बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ था। मैं जानती थी कि भैया का जीवन बहुत व्यस्त रहता है और दो-चार दिन भी बाहर रहने से दस-बीस हजार का नुकसान हो सकता है।

भैया का काम सम्हालने वाला कोई था भी नहीं। मुनीम गुमाश्तों पर इतना बड़ा विश्वास नहीं किया जा सकता था।

वही भैया, जिसे दम मारने का भी अवकाश नहीं निकलता है, आज कारखाना बन्द करके बाहर जाना चाहता है ?

आखिर कहाँ ?

“कानपुर जाने का विचार है ? मधुकर के पास।”—भैया बोले !
मधुकर के पास !

उस छलिया के पास, उस निर्दयी बेदर्द के पास, उस कपटो-निर्मोही के पास।

मेरा हृदय न जाने कैसी घृणा से भर उठा। विद्रोहपूर्ण भावना जागरित हो उठी !

मधुकर !

जिसकी कोई हस्ती नहीं, जिसकी तरह सैकड़ों हमारे यहाँ गुलाम हैं, जिसको हम सोने से तौलकर खरीद सकते हैं—

• उसके पास भैया जाँय !

और सो भी मेरे कारण ! मेरा दुख देखकर ! उफ ! मेरी नादानों ने क्या से क्या कर डाला !

भैया उसके पास जायेंगे। उससे प्रार्थना करेंगे—“मधुकर ! चलो— मेरी बहन मर रही है। उसे बचा लो—मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ...”

मेरे नेत्रों के सामने वह चित्र घूम गया । भैया की टोपी मधुकर के पैरों पर पड़ी है और मधुकर ने उसे ठुकरा दिया है ।

कह रहा है—“चले जावो यहाँ से जीवन !...तुम्हारी बहन मर रही है, तो किसी डाक्टर के पास जाओ । मेरे पास क्या रखा है !...”

एक निर्मोही, जिसने पत्रों का उत्तर तक न दिया, उससे और क्या आशा की जा सकती है ?

मेरा हृदय करुण चीत्कार से भर उठा ।

नहीं, मैं नहीं जाने दूँगी भैया को, उसके पास । मैं भैया की अव-हेलना, भैया का अपमान नहीं देख सकती !

मैं मर जाऊँगी, घुट-घुटकर तड़प-तड़पकर मगर भैया की आन पर कलंक नहीं लगने दूँगी ।

“खड़ी-खड़ी क्या सोच रही है तू !”—भैया ने कहा—“जा, जल्दी से सूटकेस में कपड़े रख दे । मैं बगी तैयार करने को कह आया हूँ । ट्रेन छूटने को केवल आधा घंटा रह गया है ।....”

“अपना काम छोड़कर तुम क्यों कानपुर जाना चाहते हो भैया !”

“जानकर अनजान बनना चाहती है पगली !”—भैया बोले—

“जाकर उस पाजी छोकरे को घसीटता हुआ यहाँ तक लाऊँगा ! ..”

मैंने देखा भैया की आँखों में पानी उमड़ आया है ।

“नहीं भैया ! कानपुर जाने की आवश्यकता नहीं”—मैंने दृढ़ स्वर में कहा ।

भैया मेरा स्वर सुनकर चौंक पड़े । बोले—“क्या हो गया है तुम्हें !”

“कुछ तो नहीं...” मैंने कहा ।

“तू मधुकर को...”

“मैं मधुकर से घृणा करती हूँ !...”

एकाएक मेरे मुँह से निकल पड़ा । मैं अपना आवेग छिपाकर वहाँ से भागी और अपने कमरे में आकर पलंग पर गिर पड़ी ।

हृदय की व्यथा, मुख से करुण स्वर बनकर निकल पड़ी मैं रोई,
जी भरकर रोई !

मैंने यह क्या कह दिया !

क्या मैं वास्तव में मधुकर से घृणा करती हूँ !

नहीं !

मधुकर, ज्वाला बनकर मेरे हृदय में बैठा मुझे जला रहा है—मुझे
घृणा है, केवल मधुकर के कार्यों के प्रति ।

मधुकर को मैं कभी भूल नहीं सकती ।

हृदय जब अत्यधिक व्यथित हो जाता है, तो वही व्यथा घृणा के
रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

मैं पलंग पर पड़ी तब तक मिसकती रही, जब तक कि भैया ने आकर
मेरी बाँह पकड़कर उठाया नहीं ।

“कहती है कि मधुकर से घृणा करती हूँ !...” बोले भैया ।

“मैं सच कहती हूँ भैया !”—

“तो रोती क्यों है ?”— पूछा भैया ने ।

“आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं को कैसे रोऊँ भैया !”—

“आँखें पोंछ ले...” भैया व्यथित स्वर में बोले—“चल आन
विजय टाकीज में ‘मुजरिम’ आया है, दिखा लाऊँ...”

“मैं सिनेमा देखने नहीं जाऊँगी !...”

“जिद्द करेगी कंचन, तो एक थप्पड़ जमा दूँगा...मालूम होता है
कि तू मुझे बनाकर ही दम लेगी...”

वह भैया !

जिसकी आँखों में पिताजी के मरने पर भी आँसू न आये थे—

आज मेरे दुख से दुख होकर आँखें पोंछ रहा था ।

भीम-सा मेरा भैया सचमुच रो रहा था ।

मैंने उठकर भैया का हाथ पकड़ लिया । बोली—“मैं सिनेमा
चलूँगी भैया !...”

भैया के साथ सिनेमा गई । श्रीविष्णु सिनेटोन का भव्य प्रदर्शन 'मुजरिम' चल रहा था । खेल सुन्दर था ।

परन्तु मेरा व्यथित हृदय तनिक भी शान्त न हो सका ।

×

×

×

आज भी तड़प रही हूँ, उस निर्मोही के आने की आश लगाये ।

अब तो केवल दो-तीन महीनों की देर है, जब कि एक नवजात शिशु मेरी सूनी गोद में कसण कन्दन कर उठेगा, सारी दुनियाँ मुझपर थूकेगी और मेरे प्यारे भैया का उज्ज्वल मुख अपमान से काला हो उठेगा । हे भगवान् !

—कञ्चनमाला



मधुकर आश्चर्य-चकित हो उठा, सागर बैंक लिमिटेड की विशाल बिल्डिंग देखकर, जो सर फिरोजशाह मेहता रोड पर आसमान के चरण चूमती खड़ी थी ।

बम्बई की चहल-पहल देखकर पहले ही मधुकर अचम्भे में पड़ गया था और अब तो हैरान था, उस बिल्डिंग की ऊँचाई देखकर ।

पाँच मंजिल की बिल्डिंग थी वह और कला ने उसे बताया कि मकान में हर मंजिल में उसी के बैंक का कार-बार होता है ।

लगभग १०० क्लर्क थे, ५० टाईपिस्ट गर्ल्स, १५ चपरासी और चार दरवान ।

कला को देखकर लम्बे-तगड़े मुगली दरवान ने झुककर सलाम किया । कला सलाम का जवाब देकर, मधुकर का हाथ पकड़े लिफ्ट पर जा चढ़ी ।

लिफ्टमैन ने स्विच दबाया और सन्न से लिफ्ट पहली मंजिल पर जा पहुँची ।

दोनों उतर पड़े ! कला मधुकर को पहली मंजिल का कार्यक्रम बताने लगी । जो भी कला को देखता झुककर अभिवादन करता । मधुकर अवाक था ।

क्लर्क लोग फाइलों में व्यस्त थे : टाइपिस्ट गर्ल्स की पतली खूबसूरत उगलियाँ टाइपराइटर की कीलों पर अविराम गति से नृत्य कर रही थीं । चपरासी कला को आते देखकर चुपचाप अदब में खड़े थे ।

पहली मंजिल पर करेण्ट अकाउण्ट का कारबार होता था ।

वहाँ से घूमकर दूसरी मंजिल पर दोनों पहुँचे । यहाँ मेनिंग बैंक अकाउण्ट का कारबार होता था ।

तीसरी मंजिल में फिक्स्ड डिपॉजिट अकाउण्ट डिपार्टमेण्ट था ।

चौथी मंजिल पर बैंक का हेड कार्टर था और पाँचवीं पर मैनेजिंग प्रोप्राइटर, मैनेजिंग डाइरेक्टर आदि के आफिस थे ।

पाँचवीं मंजिल पर पहुँच कर, एक कुर्सी की ओर इशारा कर कला बोली—‘तुम यहीं बैठो मधुकर ! मैं पिताजी से मिलकर तुम्हारे आने की सूचना दे दूँ..’

मधुकर ने देखा कि एक लाइन में चार कमरे बने हैं । सभी के दरवाजों पर पीतल के चमकते साइनबोर्ड लगे हैं । सभी दरवाजों पर स्प्रिंगदार आधे किवाड़ लगे हैं ।

मधुकर कुर्सी पर बैठ गया और कला उस दरवाजे की ओर बढ़ी, जिसके ऊपर पीतल की तख्ती में लिखा हुआ था—‘मैनेजिंग प्रोप्राइटर राय साहब सेठ बिहारीलाल ।’

राय साहब सेठ बिहारीलाल का पर्सनल असिस्टेंट अभी-अभी कुछ कागजात उनकी मेज पर रख गया था और वे उनपर हस्ताक्षर कर रहे थे कि आ पहुँची कला । अपने पिता को व्यस्त देखकर वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गई ।

सेठ बिहारी लाल पचास वर्ष की अवस्था के व्यक्ति थे । दीर्घाकार गौर वर्ण की आकृति था उनकी । चेहरे पर की रोबोली मूँछें उनके व्यक्तित्व को प्रकट करती थीं । बिलायती रेशमी सूट पहने बैठे थे वे कुर्सी पर ।

दस्तखत कर चुकने पर सेठ बिहारी लाल ने सोने की फाउन्टेनपेन मेज पर रख दिया और पाइप जलाकर पीते हुए बोले—“बंगले पर से आ रही हो कला !”

“जो हॉं ...”

“मधुकर कहाँ है !...”

“वे बाहर बैठे हैं....” कला बोली—“यहाँ लाने के पहले आप से अनुमति ले लेना आवश्यक था...”

“ठीक है—” सेठजी बोले—“कल तो तुम लोग ऐसे असमय में आये कि मैं मधुकर से कुछ बात भी न कर सका—मुझे बलब जाना था...”

“कल रात में आप कबब से कब लौटे पिताजी !...”

“आधी रात बीत चुकी थी और नुम लोग सो गये थे...” सेठजी ने कहा—“हाँ ! तो दिनेश को तो मैंने करेण्ट अकाउण्टस डिपार्टमेण्ट में एक बलर्क की जगह दे दी है । वह आज से काम करने लगा है, अँधेरी में उसने अपने रहने के लिए एक छोटा-सा मकान ले लिया है...”

“अँधेरी में ?—” कला बोली—“उतनी दूर ?—”

“क्या दर्ज है ?—” सेठजी ने कहा—“बी० बी० एण्ड सी० आई० का एक सीजन टिकट खरीद लेगा और चर्चगेट उतर कर दो मिनट में यहाँ आ पहुँचेगा ।—”

“मधुकर के रहने के लिये तो मैंने चर्नीरोड पर एक फ्लैट ले लिया है....अपने बंगले से थोड़ी दूर पर है...लगभग चार फर्लाङ्ग पर...”

सेठ बिहारीलाल का बंगला मैरीन ड्राइव पर समुद्र के एकदम किनारे था ।

“ठीक किया !...” बोले सेठ बिहारीलाल—“हाँ ! तो मधुकर तुम्हारा सहपाठी है...”

“जी हाँ !...”

“तुम्हारे साथ बी० ए० किया है उसने !...”

“जी....”

“सूरत शकल से तो लडका बुद्धिमान मालूम होता है...” सेठजी ने कहा—“उसे बुलाओ दो-चार बातें पूछ लें...”

कला बाहर जाकर मधुकर को बुला लाई । मधुकर ने सेठजी को सादर अभिवादन किया और चुपचाप खड़ा रहा ।

“उस कुर्मी पर बैठ सकते हो—” गम्भीर स्वर में सेठजी ने मधुकर को आज्ञा दी ।

और मधुकर एक कुर्मी पर बैठ गया ।

“तुम्हारा नाम !—” प्रश्न किया सेठजी ने ।

“मधुकर !...”

“कला के सहपाठी हो तुम !”

“जी हाँ !—” मधुकर ने उत्तर दिया ।

“तुम दोनों में बहुत दोस्ती है—क्यों—?” सेठजी के गम्भीर चेहरे पर मुस्कुराहट की हलकी आभा झलकी और फिर विलीन हो गई ।

“जी हाँ !...” मधुकर ने कहा ।

“...” कला के गाल, न जाने क्यों गुलाब से हो गये ।

“तुम्हारी प्रशंसा मैं अक्सर कला के पत्रों में पढ़ा करता था”— बोले सेठजी—“तुम्हें देखने की लालसा भी थी, यह सोचकर कि देखें वह युवक कैसा है, जिसके ऊपर कला की इतनी प्रबल सहानुभूति है... आज तुम्हें देखकर बहुत खुशी हुई । तुम तो बहुत सीधे-साधे लड़के हो । बहुत पसन्द आये तुम मुझे...”

“धन्यवाद !...” मधुकर ने कहा । उसे ज्ञात हुआ कि रायबहादुर सेठ बिहारीलाल के गम्भीर चेहरे के पीछे एक कोमल हृदय भी है ।

“देखो मधुकर !...” सेठजी कुर्सी का ढासना लगाकर बोले—“कल यहाँ के मैनेजिंग डाइरेक्टर मिस्टर टामसन का तबादला पूना ब्राञ्च के मैनेजर के पद पर हो रहा है । सो कला उनका काम सम्हालेगी । कला को कुछ प्रीवियस एक्सपीरियेन्स भी हैं, सो वह अपना कार्य बखूबी सम्हाल लेगी । मगर तुम इस काम में नये हो, अतः तुम्हें कला के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करना होगा—बोलो, क्या कहते हो !...”

“मुझे स्वीकार है...” मधुकर बोला ।

“याद रखो ! प्राइवेट सेक्रेटरी का पद भी कम महत्व का नहीं है—” सेठजी बोले—“बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ रहेंगी तुम्हारे सर पर और तुम्हें योग्यतापूर्वक काम सम्हालना पड़ेगा...”

“जो कुछ मैं कर सकूँगा, उसके करने से पीछे न हटूँगा...”

“अगर तुम योग्य प्रमाणित हुए, तो मैं तुम्हारे उत्थान का वचन देता हूँ...” पाइप का कश खींचते हुए बोले सेठजी ।

“आपकी इम कृपा के लिए मैं आभारा हूँ...”

“कला का धन्यवाद दो, जिसकी सिफारिश से तुम्हें प्राइवेट सेक्रेटरी का पद मिल रहा है, अन्यथा तुम्हें भी दिनेशचन्द्र की तरह कोई मामूली क्लर्क की जगह दी जाती...” बोले सेठजी ।

“.....”

मधुकर ने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि कला पर डाली । मुस्कुरा पड़ी कला ।

सेठजी ने कॉलिंग बेल पर हाथ रखा । तुरन्त ही एक चपरासी आकर अदब के साथ खड़ा हो गया ।

“मिस्टर टामसन को बुलाओ—”

चपरासी बाहर चला गया । थोड़ी ही देर के बाद वहाँ एक हसीन एंग्लोइण्डियन युवती ने प्रवेश किया ।

अठारह साल की उमर थी । गालों पर खून उभर आया था, कागज

जैसे सफेद चमड़े पर कहीं शिकन न थी, होठों की मादकता लिपस्टिक ने द्विगुणित कर दी थी, पग-पग पर अवयव नागिन से लहराते थे ।

वह मिस्टर टामसन की प्राइवेट सेक्रेटरी थी । नाम था आइडा रिबेला ।

आते ही रिबेला ने मधुकर पर एक चुभती दृष्टि डाली और तब सेठजी और कला को अभिवादन कर एक कुर्सी पर बैठ गई ।

मधुकर रिबेला की ओर देखकर ठक-सा रह गया था । यौवन-मद से इतराती हुई उसकी आँखों में शराब का समुद्र लहरा रहा था ।

“मिस्टर टामसन कहाँ हैं मिस रिबेला !” — पूछा सेठजी ने ।

“मिस्टर टामसन अभी आफ्टरनून टी पर बैठे हैं सर !” — रिबेला ने कहा — “उन्होंने मुझे आपकी खिदमत में भेजा है...”

“ऑल राइट !” — बोले सेठ बिहारीलाल — “तुम्हें मालूम है कि कल मिस्टर टामसन का और तुम्हारा तबादला पूना ब्रांच को हो रहा है । अतः मिस्टर टामसन को बोलो कि वे अपना चार्ज कलाकुमारी को दे दें और तुम अपना चार्ज मिस्टर मधुकर को...”

“थैंक्यू !...” कहकर रिबेला, कला और मधुकर से बोली — “आप लोग मेरे साथ आने की तकलीफ करें ।

कला और मधुकर रिबेला के पीछे चले ।

तीन कमरों के बाद ही मैनेजिंग डाइरेक्टर का आफिस था । रिबेला ने इज्जत के साथ कला और मधुकर को बिठाया ।

तब तक मिस्टर टामसन भी रिफ्रेशमेन्ट रूम से निकलकर वहाँ आ पहुँचे । रिबेला ने उन्हें सेठजी की आज्ञा कह सुनाई ।

मिस्टर टामसन कला की कागज पत्र समझाने लगे और रिबेला मधुकर को ।

बातचीत से मधुकर को ज्ञात हुआ कि जिस तरह रिबेला की आकृति मादक है, उसी तरह उसका स्वर भी ।

“समझ गये आप ?”—सब कुछ समझा चुकने पर रिबेला ने मधुकर की ओर हतादल भरे नयनों से देखा ।

“जी हाँ ! धन्यवाद !”—मधुकर बोला—“आप को बहुत तकलीफ हुई !”

“तकलीफ की क्या बात कहते हैं !”—रिबेला मीठे स्वर में धीरे से बोली—“आप जैसे आदमों के साथ अगर मुझे काम करना पड़े, तो मैं रात भर न गऊँ...”

“थैंक्यू !...” मधुकर ने कहा ।

“आपका साथ मुझे बहुत पसन्द है !”—रिबेला ने मधुकर के हाथों पर अपना हाथ रखकर कहा—“मगर अफसोस, कल मैं पूना जा रही हूँ । क्या आप कभी-कभी मुझे पत्र लिखने का कष्ट करेंगे ?...”

“अवश्य !...इसमें कष्ट की क्या बात है ?”—मधुकर बोला ।

रिबेला ने पाकेट से सिग्रेटकेस निकाला । कहा—“सिग्रेट पीजिये...”

“धन्यवाद !”—कहकर मधुकर ने सिग्रेट ले ली । दोनों सिग्रेट पीने लगे ।

शाम को जब कला और मधुकर “सागर बैंक लिमिटेड” से बाहर आये, तो मिल गया दिनेश । मधुकर को देखकर उसने घृणापूर्वक मुँह सिकोड़ा और तब कला की ओर बढ़ा ।

“तुमने तो अपने पिताजी से मेरी खूब सिफारिश की कला ।”—बोला दिनेश—“और मुझे एक मामूली क्लर्क की जगह दिला दी...”

“मैं क्या कर सकती थी !”—...कला ने कहा ।

“हाँ ! तुम मेरे लिए क्या कर सकती हो ?”—मधुकर को घूरता हुआ बोला दिनेश—“तुम जो कर सकती हो, वह केवल मधुकर के लिये तभी तो इस प्राइवेट सेक्रेटरी की जगह दिला दी ।...”

“मुझे अफसोस है मिस्टर दिनेश, कि तुम्हें मुझसे डाह करने का अवसर मिला !”—मधुकर बोला ।

“तुम चुप रहो मधुकर !... मैं अन्धा नहीं, सब कुछ समझता हूँ मेरे रास्ते पर पर काँटे बिछा रहे हो !”

कहकर दिनेश दूसरी ओर चल पड़ा ।

ईर्षालु दिनेश ने यही समझा था कि मधुकर ने ही कला को उसकी सिफारिश करने के लिए मना कर दिया था ।



मधुकर का जीवन अत्यन्त व्यस्त था । प्रातः काल उठता । शौचादि से निवृत्त होकर मार्निंग पेपर देखने लगता और साथ ही साथ चाय भी पीता जाता । जब तक नौ बजे जाते । झटपट उठकर स्नान करता और भोजन करके आफिसरवाना हो जाता । सागर बैंक लिमिटेड का आफिस ठीक दस बजे खुलता था ।

आफिस में १० बजे से ५ तक उसे दम मारने की भी फुर्सत न रहती, क्योंकि अधिकांशतः कला का भी काम उसे ही करना पड़ता ।

उसका वेतन ढाई सौ रुपये मासिक था ।

कला की सहायुभूति उसपर ज्यों की त्यों बनी रही । मधुकर को कला का कार्य करने में बहुत आनन्द की अनुभूति होती थी ।

कला की बातें, कला का साथ बहुत पसन्द आता था मधुकर को । शाम को दोनों, आफिस से, साथ-साथ निकलते और चर्चगेट स्टेशन पर आकर स्टेशन रेस्टुरा में चाय पीते और तब गाड़ी पर सवार होकर कभी दादर, कभी अंधेरी, कभी अजन्ता आदि स्थान घूमते ।

सिनेमा तो लगभग प्रतिदिन साथ देखते थे ।

इस प्रकार चहल-पहल में मधुकर के दिन व्यतीत हो रहे थे । धीरे-धीरे अपनी माँ की याद भूलता जा रहा था ।

और उस बुढ़िया दादी की प्रार्थना तो वह एक दम विस्मृत कर बैठा था ।

दिनेश !

वह व्यक्ति, जिसके रग-रग में मधुकर के प्रति घृणा भरी हुई थी, जो यह कदापि सहन नहीं कर सकता था कि उस जैसे आत्मीय के होते हुए भी, कला, मधुकर जैसे नाचीज के लिए पागल बनी फिरती रहे ।

वह जल-भुनकर आक हो रहा था ।

एक दिन कला को उसने अपनी बनाने का स्वप्न देखा था ।

और मधुकर उसके रास्ते का काँटा, उसके मार्ग का रोड़ा हो रहा था ।

हठ प्रतिश था दिनेश !

वह इस काँटे को नष्ट कर देगा, इस रोड़े को पीसकर धूल में मिला देगा ।

दिनेश का घृणा भाव बढ़ता गया—उसकी विरोध भावना उच्चतम होती गई—

मधुकर अनाभिज्ञ था । उस इन सब बातों के सोचने का अवकाश ही न था । वह अपना काम अत्यन्त ईमानदारी के साथ, लगनपूर्वक कर रहा था, क्योंकि रायसाहब सेठ बिहारीलाल ने उसे उन्नति का वचन दिया था ।

और वह चाहता था कि वह अपने विद्या-बुद्धि द्वारा अपनी लगन द्वारा यह सिद्ध कर दे कि वह वास्तव में उन्नति पाने का अधिकारी है ।

मधुकर का कार्य रायसाहब सेठ बिहारी लाल से छिपा न था । वे बहुत प्रसन्न थे, मधुकर जैसा सच्चा कर्मचारी पाकर । वे उसके उन्नति के लिये हृदय से इच्छुक थे ।

यही कारण था कि उन्होंने कला को मधुकर के साथ स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने में कभी रोक न लगाई ।

उस दिन—

अपने आफिस में मेज के पास बैठी हुई कला, मधुकर द्वारा दिये गये कुछ कागजात देख रही थी ।

मधुकर बगल में खड़ा था ।

“यह क्या है ?” कला ने पूछा ।

‘यहाँ आपका साइन होना चाहिये !’—मधुकर बोला ।

‘तुम मुझे ‘आप’ कब से कहने लगे...’ आरक्त होठों पर मदिर मुस्कान लाकर कला ने पूछा ।

‘जब से आप मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठों...’ बोला मधुकर ।

‘तुम खड़े क्यों हो !...बैठ क्यों नहीं जाते !...’

‘आपने बैठने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए...’ हिचकिचाते हुए मधुकर कुर्सी पर बैठ गया ।

वह नाट्य कर रहा था ।

‘मधुकर ! हमारी-तुम्हारी घनिष्ठता, क्या मेरे इस पद से छूट सकती है ! हम तुम तो वही रहेंगे, जो पहले थे...’ कला बोली ।

‘जी नहीं !’—मधुकर ने कहा—‘आफिस में आप मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हैं और मैं प्राइवेट सेक्रेटरी के—इसलिये मुझे आपका सम्मान करना आवश्यक है...’

‘शाबास !...’

कहते हुए आ पहुँचे सेठ बिहारीलाल ।

मधुकर और कला उठकर खड़े हो गये ।

‘बैठो !...’ सेठ जी बैठते हुए बोले—‘बहुत प्यारी-प्यारी बातें करते हो तुम लोग...मधुकर !...तुमने खूब जवाब दिया बेटा !...’

‘आप तो बस इन्हीं की तारीफ करेंगे पिताजी !...’

बोली कला ।

‘तुम्हारी भी तारीफ करता हूँ, कला, जो तुमने मेरे लिये ऐसा

होनहार बेटा खोज निकाला। मैं देखता हूँ कि तुम तो केवल कुर्सी पर बैठी रहती हो और सारा कार्य करता है मधुकर !...”

“ये मुझे करने ही नहीं देते पिताजी !...” कला हँस कर बोली।

“भला मैंने कब किमी का हाथ पकड़कर रोका है ?”—मधुकर कला की ओर देखकर बोला।

“ठीक से काम करो कला !”—बोले सेठजी—“अन्यथा मुझे बाध्य होकर मधुकर को मैनेजिंग डायरेक्टर बनाना पड़ेगा और तुम्हें उसका प्राइवेट सेक्रेटरी !...”

“तो बना न दीजिये—रोकता कौन है !...आज ही बना दीजिये—” कला ने कहा।

“मैं तुम्हें एक सप्ताह का समय देता हूँ !”—हँसकर बोले सेठजी।

और तब उठकर कमरे से बाहर चले गये।

“क्या हा अच्छा होता कि मैं ही प्राइवेट सेक्रेटरी होती....” कला घीरे से बोली।

“क्यों ?...”

“तब हमारी-तुम्हारी घनिष्ठता तो न टूटती !...नहीं तो अब मैं ‘तुम’ से ‘आप’ बन गई...”

हँस पड़ी कला।

“कला !...” मधुकर कला का कुर्सी की बाँह पर आकर बैठ गया।

“वाह !...” नाट्य करती हुई कला बोली—“जरा तमीत्र से बोलो और ठीक से बैठो—क्या तुम नहीं जानते....”

“जानता हूँ...जानता हूँ...तुम्हारे बताने की जरूरत नहीं...”

“क्या जानते हो !”—कला ने पूछा।

“यही कि मुझे कत्ल किया गया है...” मधुकर मुस्कुरा कर बोला।

“कत्ल !...” कला ने कहा—“अच्छा तो न्यायधीश तुमसे कुछ प्रश्न करेंगे, जवाब दोगे तुम !...”

“अवश्य !....”

“तुम्हें कत्ल किया गया है !...”

“जी हाँ...”

“तुम मर गये हो ?”

“जी हाँ !...”

“तो बोलते कैसे हो !...” पृच्छा कला ने ।

“मरकर बोल रहा हूँ इजूर !...”

“मरकर बोल रहे हो !...क्या भूत हो तुम ?...”

“जी नहीं—प्रेमी !...”

“क्या मतलब तुम्हारा !”—

“मेरा तात्पर्य यह है सरकार ! कि प्रेमी मरकर भी बोलते हैं ..”
मधुकर ने कहा ।

“अच्छा !”—कला बोली—“तो तुम प्रेमी हो !...”

“आपका खयाल दुस्त है इजूर !....”

“तुम्हें किसने कत्ल किया ?”—

“किमी की आँखों ने...”

“.....”

“इजूर ! फैसला इरशाद फरमायें !”—मधुकर बोला—“गुलाम फैसले का मुन्तजिर है !”

“फैसला यह है कि जिसकी आँखों ने तुम्हें कत्ल किया है, उसे आजन्म कारावास का दण्ड दिया जाता है । तुम उसे अपने नयन कारागार में अजीवन बन्दी बनाये रखना...समझे !”—कला ने कहा ।

“जो आशा इजूर !...”

और दोनों बिलखिलाकर हँस पड़े ।

“फैसला तो खूब किया तुमने !...” मधुकर ने कहा ।

“और प्रश्न भी तो तुमने खूब पूछा था !”—कला बोली—“क्या मैं पूछ सकती हूँ कि किन आँखों ने तुम्हें कत्ल किया है !...”

“क्या करोगी पूछकर !”—कहा मधुकर ने—“कत्ल करने वाली आँखों ने तो फैसला सुना ही दिया....”

“तुम बड़े शैतान हो मधुकर !”—कला ने मुलायमित से मधुकर का हाथ पकड़ कर दबाया ।

“और तुम्हारी आँखें !...”

मधुकर भूला जा रहा था अपने को ।

“वे तो मासूम हैं...” बोली कला ।

तभी, कहीं पास ही ग्रामोफोन बज उठा ।

मासूम नजर का भोलापन, ललचा के लुभाना क्या जाने !

दिल आप निशाना बनता है, वह तीर चलाना क्या जाने !

कला ने मदहोशी भरी आँखें मधुकर के सलौने चेहरे पर गड़ा दीं ।

मधुकर का चेहरा क्षणिक आवेग से लाल हो रहा था ।

वह सब कुछ भूल गया था ।

सब कुछ !

और उसके शान-तन्तु तब लौटे, जब कला के आतुर अधरद्वय मधुकर के दोठों के पास आ गये थे ।

“माफ कीजिये...”

दरवाजे पर दिनेश खड़ा था ।

मधुकर और कला चौककर अलग हो ।

“माफ कीजियेगा !”—दिनेश की आँखों में शरारत तैर रही थी, आँखों की भौंहें कुछ टेढ़ा थीं—मुझे अफसोस है कि मैंने आप लोगों को इन्टरफियर किया । यदि जानता कि आप लोग ऐसे पोज में हैं तो कभी न आता...”

“क्यों आये हो !...” कला ने रूखे स्वर में पूछा ।

“इस पेपर पर आपसे साइन कराना था...”

दिनेश ने हाथ का कागज कला की मेज पर रख दिया । कला ने फाउन्टेन निकालकर हस्ताक्षर कर दिया ।

“अब तुम जा सकते हो !” —कला ने दिनेश से कहा ।

“मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ मिस कला !” —दिनेश खड़ा-खड़ा बोला ।

“कहो !...”

“बातें बहुत आवश्यक और गुप्त हैं...” कहा दिनेश ने — “ऐसी दशा में एकान्त होना चाहिये...”

कला ने मधुकर की ओर देखा ।

मधुकर कला का आशय समझ गया और धीरे से कमरे के बाहर हो गया ।

“कहो ! क्या कहना चाहते हो ?” —कला ने पूछा ।

दिनेश एक कुर्सी खींचकर बैठ गया ।

बोला — “अपनी बात शुरू करने से पहले मैं यह बता देना चाहता हूँ कि आपके प्रति मेरी पूरी महानुभूति है और...और एक सम्झौती होने के नाते मैं आपका शुभेच्छु हूँ...”

रुका दिनेश । अपनी बातों का प्रभाव जानने के लिये उनसे कला की ओर देखा —

“धन्यवाद !—” कला बोली — “रुकिये मत—जो कुछ कहना है, कहे चलिये—मेरे पास समय बहुत कम है...”

“कहना यह चाहता हूँ कि आप क्षणिक आवेग में पड़कर-अपने आपको भूलें नहीं...” कहने लगा दिनेश — “मैं देख रहा हूँ कि आपने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है, वह कण्टकाकीर्ण है। मैं आपकी बर्बादी नहीं देख सकता मिस कला !...”

“आपने बहुत ठीक कहा । अब आप जा सकते हैं...”

“जी नहीं !...” दिनेश अपनी कुर्सी पर से उठकर कला के पास आ खड़ा हुआ — “अभी मैं कुछ और बातें कहना चाहता हूँ मिस कला । आपने अपनी लाइफ का पार्टनर जिस व्यक्ति को चुना है, मेरा मतलब मधुकर से है, उसका और उसकी परिस्थिति पुरुष होने के नाते मैं अधिक

समझ सकता हूँ... मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप उमका साथ छोड़ दें...”

कला ने आग्नेय नेत्रों से दिनेश की ओर देखा ।

दिनेश सहम गया ।

“क्यों !...” कला ने पूछा ।

“वह लुली है—कपटी है—” बोला दिनेश—“उसकी हैसियत मिट्टी के चन्द टुकड़ों की है । वह आपके योग्य नहीं...”

“दिनेश !...” गरज उठी कला ।

“जी !....” दृढ़ स्वर में बोला दिनेश ।

“यह न भूलो कि मैं कौन हूँ ! और तुम किससे बातें कर रहे हो ?—” तेजी के साथ कला ने कहा ।

क्रोध से उसकी मुखाकृति रक्तवर्ण हो उठी थी ।

“मैं खूब समझता हूँ कि आप कौन हैं और मैं किससे बातें कर रहा हूँ !”—दिनेश बोला—“मैं यह भी जानता हूँ कि मधुकर किसलिए कान-पुर से यहाँ लाया गया है और क्यों आपने उसकी सिफारिश कर उसे अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाया है...”

“चुप रहो !...” कला क्रोधपूर्ण स्वर में बोली ।

“मैं यह भी कह देता हूँ कि बैंक में तुम दोनों की कोर्टशिप अधिक दिनों तक न चल सकेगी...”

“निकल जाओ यहाँ से...” चिल्ला उठी कला और उसको उँगली कौलिंग बेल पर जा पड़ी ।

मधुकर तुरन्त ही कमरे में आया ।

“इस जलील को निकाल दो यहाँ से...” कला हाफती हुई बोली ।

मधुकर ने मजबूती के साथ उसकी बाँह पकड़ ली और दरवाजे के बाहर कर आया ।

जाते हुए बोला दिनेश—“मधुकर ! तुम सॉप से खेल रहे हो ।

कालेज में तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु थे और यहाँ भी तुमने मेरा पीछा न छोड़ा। मैं इसे सह नहीं सकता।”

मधुकर भीतर आया, तो कला अब भी हाँफ रही थी।

उसने उसका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठा दिया।

“जाने दो—पागल है वह, कला !...”

“पागल नहीं है—” कला ने कहा—“कुत्ता है !...”



रायसाहब सेठ बिहारी लाल इवनिंग सूट और नाइट कैप पहनकर, क्लब जाने के लिए कार में आकर बैठे ही थे कि आ पहुँचा दिनेश।

“चाचा !....” उसने पुकारा।

“क्या है दिनेश ?”—सेठजी बोले—“बँगले के भीतर जाओ। मधुकर और कला वहीं हैं...”

“मुझे कुछ बातें करनी हैं चाचा !”

“बातें ?...तो कला से मिलकर कह दो...मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा...” उतावली के साथ बोले सेठजी।

“जी नहीं चाचा ! मुझ आपसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं—” दिनेश ने कहा।

“मैं इस समय क्लब जा रहा जा रहा हूँ !”—बोले सेठजी—“बहुत जल्दी मैं हूँ। कल आफिस में मुझसे बातें कर लेना...”

“वे बातें आफिस में नहीं कही जा सकतीं...गुप्त बातें हैं।”

“गुप्त बातें ?...” कुछ सोचने लगे सेठजी—“अच्छा, तो आओ, कार में बैठ जाओ। रास्ते में कहना...”

दिनेश कार पर बैठ गया । कार चल पड़ी ।

“क्या कहना चाहते थे । ?....” पूछा सेठ जी ने ।

“चाचा ! मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, उसके कहने के लिए मुझे बहुत अफसोस है । फिर भी कला की भलाई के लिए मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ...”

“तुम निर्भय होकर कहो !” —सेठ जी ने आशा दी ।

“मैं कहना चाहता था...” दिनेश कहने लगा—“कि मिस कला आजकल मधुकर के संगीत से अधिक प्रभावित हो रही है, मेरा मतलब यह है कि...”

“मैं समझ रहा हूँ...तुम कहते चलो...”

“मधुकर की चालबाजियाँ मैं कालेज में देख ही चुका था, यहाँ भी देख रहा हूँ । मैं नहीं चाहता कि मिस कला उस मक्कार मधुकर की बातों में आकर कुछ ऐसा-वैसा कर बैठें...”

“क्या कहने हो तुम !...” सेठ जी को आवाज कुछ तेज हो गई ।

“मैं ठाक कह रहा हूँ चाचा ! मधुकर एक निर्धन आचारा व्यक्ति ...कला का उससे प्रभावित होना घृणित है...”

“कला खुद अपना बुरा-भला सोच सकती है...”

“यहाँ तो रोगा है...” दिनेश बोला —“यौवन का आवेग किसी को बुरा-भला सोचने का अवसर ही नहीं देता चाचा...”

“तुम तो बहुत बड़े बुजुर्ग हो न ! जो ऐसी बातें कह रहे हो....” सेठ जी के मुख पर घृणा के भाव प्रतिबिम्बित हो रहे थे ।

“मैंने आपको सावधान कर दिया है—यदि आप इस बात पर ध्यान पूर्वक विचार नहीं करते, तो पछताना पड़ेगा आपको...कला और मधुकर में अक्ल नहीं है...”

“अक्ल नहीं है, तभी तो वे दोनों फर्स्ट डिवीजन में...” घृणा-पूर्वक बोले सेठजी ।

“मेरा मतलब...”

कालेज में तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु थे और यहाँ भी तुमने मेरा पीछा न छोड़ा। मैं इसे सह नहीं सकता।”

मधुकर भीतर आया, तो कला अब भी हाँफ रही थी।

उसने उसका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठा दिया।

“जाने दो—पागल है वह, कला !...”

“पागल नहीं है—” कला ने कहा—“कुत्ता है !...”



रायसाहब सेठ बिहारी लाल इवनिंग सूट और नाइट कैप पहनकर, क्लब जाने के लिए, कार में आकर बैठे ही थे कि आ पहुँचा दिनेश।

“चाचा !....” उसने पुकारा।

“क्या है दिनेश ?”—सेठजी बोले—“बँगले के भीतर जाओ।

मधुकर और कला वहीं हैं...”

“मुझे कुछ बातें करनी हैं चाचा !”

“बातें ?...तो कला से मिलकर कह दो...मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा...” उतावली के साथ बोले सेठजी।

“जी नहीं चाचा ! मुझ आपसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं—” दिनेश ने कहा।

“मैं इस समय क्लब जा रहा जा रहा हूँ !”—बोले सेठजी—“बहुत जल्दी मैं हूँ। कल आफिस में मुझसे बातें कर लेना...”

“वे बातें आफिस में नहीं कही जा सकती...गुप्त बातें हैं।”

“गुप्त बातें ?...” कुछ सोचने लगे सेठजी—“अच्छा, तो आओ, कार में बैठ जाओ। रास्ते में कहना...”

दिनेश कार पर बैठ गया। कार चल पड़ी।

“क्या कहना चाहते थे। ?....” पूछा सेठ जी ने।

“चाचा ! मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, उसके कहने के लिए मुझे बहुत अफमोस है। फिर भी कला की भलाई के लिए मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ...”

“तुम निर्भय होकर कहो !” —सेठ जी ने आशा दी।

“मैं कहना चाहता था...” दिनेश कहने लगा—“कि मिस कला आजकल मधुकर के संगीत से अधिक प्रभावित हो रही हैं, मेरा मतलब यह है कि...”

“मैं समझ रहा हूँ...तुम कहते चलो...”

“मधुकर की चालबाजियाँ मैं कालेज में देख ही चुका था, यहाँ भी देख रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि मिस कला उस मक्कार मधुकर की बातों में आकर कुछ ऐसा-वैसा कर बैठें...”

“क्या कहते हो तुम ?...” सेठ जी को आवाज कुछ तेज हो गई।

“मैं ठाक कह रहा हूँ चाचा ! मधुकर एक निर्धन आवारा व्यक्ति ...कला का उससे प्रभावित होना घृणित है...”

“कला खुद अपना बुरा-भला सोच सकती है...”

“यही तो रोना है...” दिनेश बोला —“यौवन का आवेग किसी को बुरा-भला सोचने का अवसर ही नहीं देता चाचा...”

“तुम तो बहुत बड़े बुजुर्ग हो न ! जो ऐसी बातें कह रहे हो....” सेठ जी के मुख पर घृणा के भाव प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

“मैंने आपको सावधान कर दिया है—यदि आप इस बात पर ध्यान पूर्वक विचार नहीं करते, तो पछताना पड़ेगा आपको...कला और मधुकर में अफन नहीं है...”

“अफन नहीं है, तभी तो वे दोनों फर्स्ट डिवीजन में...” घृणा-पूर्वक बोले सेठजी।

“मेरा मतलब...”

“कार रोको !...” सेठजी ने ड्राइवर को आशा दी ।

कार रुक गई ।

“उतरो...” दिनेश से बोले सेठजी ।

सहमकर दिनेश कार से नीचे उतर पड़ा ।

सेठजी ने अपनार्स खोलकर एक रुपया दिनेश के सामने फेंक दिया ।

बोले—“सामने न्यू वेस्ट एण्ड में जाकर ‘दोस्त’ फिल्म देख लो और सीखो कि मित्र के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है....”

सेठजी की कार आगे बढ़ गई ।

दिनेश ने क्रोध से दाँत पीसा ।

उसी दिन शाम को—

मधुकर और कला, बैंक की भावी उन्नति के लिए कुछ स्कीमें तैयार कर रहे थे ! उन स्कीमों पर अमल करने से सागर बैंक लिमिटेड उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जा सकता था ।

मधुकर के मस्तिष्क ने ही उन स्कीमों को सोचा था—

और कला उनपर अपने विचार प्रकट कर रही थी ।

दूसरे दिन कला और मधुकर ने अपनी स्कीमों के वे कागजात रायसाहब सेठ बिहारीलाल के समक्ष ला रखा ।

सेठजी अपने आफिस रूम में बैठे हुए, दिनेश की कही हुई बातों पर विचार कर रहे थे ।

उन कागजों को देखकर उन्होंने पूछा—“क्या है !”

“बैंक की उन्नति के लिए कुछ स्कीमें...” कला ने उत्तर दिया ।

सेठजी अनमने भाव से उन कागजों पर दृष्टि दौड़ाने लगे ।

वे सोच रहे थे कि ये अनुभवहीन प्राणी, मधुकर और कला, बैंक की उन्नति में क्या सहायक हो सकते हैं, जब कि सेठजी वैसा अनुभवी और व्यवहार कुशल व्यक्ति उस बैंक का संचालन कर रहा है !

मगर दो ही कागज पढ़कर सेठजी की आँखें आश्चर्य से चमक उठीं। वे जल्दी-जल्दी उत्सुकता-पूर्वक सब कागज पढ़ने लगे।

ये वे स्कीमें थी, जिनसे बैंक के प्रत्येक शेयरहोल्डर को २५ प्रतिशत अधिक डिविडेंड दिया जा सकता था।

ये वे सुझाव थे, जिन्हें सेठजी का परिष्कृत मस्तिष्क भी न सोच सका था।

“किसने तैयार किये हैं ये कागज !”—आश्चर्यचकित हो पूछा सेठजी ने।

“मिस कला ने !”—बोला मधुकर।

“मिस्टर मधुकर ने...” बोला कला।

“जी नहीं—मिस कला ने—”

“जी नहीं—मिस्टर मधुकर ने—”

अगम आश्चर्य के साथ सेठजी ने उन दोनों की ओर देखा। दोनों एक दूसरे को उन कागजों का प्रस्तुतकर्ता बता रहे थे।

यह निश्चय था कि उन दोनों में से एक झूठ अवश्य बोल रहा था।

सेठजी उनका आपसी व्यवहार देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

“ठीक-ठोक बताओ”—सेठजी ने पूछा—“किसके पास इतना बड़ा मस्तिष्क है, जिसने मेरे मस्तिष्क को पराजित किया है—कला ! क्या यह तुम्हारा मस्तिष्क है !—”

“जी नहीं पिताजी !”—कला बोली—“मेरा मस्तिष्क तो बहुत छोटा है—”

“क्या यह तुम्हारी कृति है मधुकर !—”

“जी नहीं बाबूजी ! मेरा मस्तिष्क तो और छोटा है, तोले भर का—”

हँसते-हँसते सम्हाला अपने को सेठजी ने और गम्भीर स्वर में पूछा—

“सच सच बताओ—किसने ये कागज तैयार किये हैं !”—

सेठजी का स्वर कठोर था, परन्तु उसके पीछे वात्सल्य अन्तर्हित था।

“मिस्टर मधुकर ने तैयार किया है पिताजी !”—कला बोली।

“.....”

इस बार मधुकर चुप रहा ।

“शाबास बेटा !—”

सेठजी ने हर्षित होकर मधुकर की पीठ ठोकी ।

“आज तुमने मुझे बेदाम खरीद लिया—तुम देखोगे कि इन स्कीमों द्वारा हमारा बैंक अगले महीने बम्बई का सबसे बड़ा बैंक गिना जायेगा—”

सेठजी उन कागजों को फिर पढ़ने लगे ।

मधुकर और कला अपने आफिस में चले गये ।

“पिताजी तुमसे बहुत खुश हैं मधुकर !—” कला ने कहा ।

“और हम तुमसे बहुत नाखुश हैं कला !”—बनावटी गम्भीरता के साथ बोला मधुकर ।

“क्यों ?—”

“तुमने सेठजी को मेरा नाम क्यों बताया ?...

“तुम्हीं ने तो वे कागज तैयार किये थे न ?”—कला ने कहा—
“अब पिताजी तुम्हें मुँह मॉंगा इनाम देंगे—”

“क्या देंगे इनाम ?”—पूछा मधुकर ने ।

“जो तुम माँगोगे—” कहते-कहते कला के कपोल अरुणिम हो उठे ।

“मैं तो सेठजी से तुम्हें ही माँग लूँगा—हँसकर बोला मधुकर—
“कम से कम तुम्हारे रहने से मेरी लापरवाही तो दूर हो जायगी—”

“माँग न लो मुझी को—मुझे इनकार थोड़े ही है—”

कहती हुई कला लाज से सिमट गई । गला अवरुद्ध हो गया ।

मधुकर को अपनी गलती मालूम हुई । उसने तो हँसी-हँसी में ये बातें कही थीं, परन्तु कला के मदहोश कानों ने सच सुना और उरुनसित हृदय ने सच समझा ।

मधुकर जानता है कि कला के हृदय में उसके लिए क्या भाव है और वह नादान युवती उसके पैरों पर अपना हृदय रखकर किस वस्तु की चाहना करती है ।

परन्तु विवश है मधुकर !

उसके हृदय में कला के लिए अब तक केवल सद्दानुभूति है ।

हाँ कभी-कभी ऐसा हुआ है कि कला ने परिस्थिति में अपने जवानी की मादकता भर दी है और मधुकर यौवन का आवेग न सम्हाल कर मदहोश हो उठा है :

परन्तु फिर आवेग शान्त हो जाने पर वह घण्टों पड़ता था ।

विवश था मधुकर कला का अपने प्रति आकर्षण देखकर ।

उसा समय चपरासी ने आकर निवेदन किया —“हजूर । आप दोनों को बड़े हजूर बुला रहे हैं—”

कला और मधुकर सेठजी के आफिस में आये ।

“कला !—” सेठजी बोले—“तुम बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद के लिए आयोग्य प्रमाणित हुई हो—”

“पिता जी !”

“बात यह है—” कहने लगे सेठजी—“मैंने देखा है कि तुम चुपचाप कुर्सी पर बैठी रहती हो और मधुकर को ही सारा काम करना पड़ता है—तुम्हारा भी और अपना भी—और आज मधुकर ने अपने मस्तिष्क की योग्यता प्रमाणित भी कर दी है । अतः मैं उसे ही मैनेजिंग डाइरेक्टर नियुक्त करता हूँ—तुम्हें मधुकर के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम सम्हालना पड़ेगा—”

“बाबूजी !...” मधुकर ने कुछ कहना चाहा ।

“तुम चुप रहो मधुकर !—” रोका सेठजी ने—“मैं तुम्हारी योग्यता का उचित पुरस्कार देना चाहता हूँ ! मैं कृतघ्न नहीं—”

“परन्तु हम कला, दो नहीं हैं बाबूजी !...”

न जाने कैसे मधुकर के मुख से ये वाक्य निकल पड़े ।

“ईश्वर न करे कि तुम लोगों को कभी दो होना पड़े !”—बोले सेठजी—“कल तुम अपना चार्ज मधुकर को दे दो और मधुकर ! तुम अपना चार्ज कला के हवाले करो....जा सकते हो तुम लोग....”

मधुकर और कला अपने आफ्रिस में आये ।

दोनों बहुत प्रसन्न थे ।

कला तो विभोर हो उठी थी ।

“मधुकर !....” उसने उर्नीदी आँखों से मधुकर की ओर देखते हुए पुकारा ।

“कला !...” मधुकर ने कला का हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा लिया ।

“आज मैं बहुत खुश हूँ...” बोली कला ।

“क्यों !....क्या पाया है तुमने ?”—पूछ बैठा मधुकर ।

“तुम्हें !...” विह्वल स्वर में बोली कला । मधुकर ने उसका हाथ पकड़कर दबाया ।



अब तो मधुकर का जीवन और व्यस्त हो गया । मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर के पद पर आ जाने से उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गई, वेतन पाँच सौ रुपये मासिक हो गया ।

कला अब उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी थी ।

उस दिन कला ने कुछ कागज मधुकर की मेज पर ला रखा और अदब के साथ खड़ी रही ।

“यह क्या है ?”—मधुकर ने पूछा ।

“यहाँ आपका साइन होना चाहिए...” कला बोली ।

“तुम मुझे ‘आप’ कब से कहने लगी ?”—दोठों में मुस्कराकर मधुकर ने कला की ओर देखा ।

“जब से आप मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठे...” बोली कला !

“तुम खड़ी क्यों हो !— बैठ क्यों नहीं जाती !—”

“आपने बैठने की आज्ञा नहीं दी, इसलिये—” हिचकती हुई कला कुर्सी पर बैठ गई ।

“कला ! हमारी तुम्हारी घनिष्टता क्या मेरे इस पद से छूट सकती है ! हम तुम तो वही रहेंगे जो पहले थे—” मधुकर बोला ।

“जो नहीं—” कला ने कहा—“आफिस में आप मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हैं और मैं प्राइवेट सेक्रेटरी के, इसलिये मुझे आपका सम्मान करना आवश्यक है—”

यहो वे बातें थी, जो एक दिन हुई थीं, जब मधुकर प्राइवेट सेक्रेटरी था और कला मैनेजिंग डाइरेक्टर ।

और आज पुनः वही बातें हुई ।

मगर आज, कला के लिये, मेठजी ने आकर शाबाश नहीं कहा ।

सो मधुकर हो उनके स्वर की नकल करता हुआ बोला—
“शाबाश !”

और फिर दोनों हँस पड़े ।

शाम को जब मधुकर चर्नी रोडवाले डेरे पर आया, तो उसका हृदय उद्वेलित था, न जाने क्यों !

उसने कला के सिनेमा चलने के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया था और चर्चगेट पर चाय भी नहीं पी थी ।

उसका मन ग्लानि के प्रवाह में पड़कर डूबा जा रहा था ।

उफ़ ! वह क्या था—क्या हो गया !

एक जमाना वह था कि मधुकर के हृदय में कला के प्रति केवल सहानुभूति थी और कुछ नहीं—

कोई आकर्षण नहीं—

कोई मदहोशी नहीं—

कुछ नहीं ।

परन्तु सदैव कला के साथ रहते-रहते उसकी मधुर बातें सुनते-सुनते उसके यौवन का निरीक्षण करते-करते, उसके नयनों की मदिरा पीते-पीते वह मदहोश हो चला था ।

कला के अत्यधिक सम्पर्क ने उससे उसकी चेतना छीन ली थी । वह बहकर किधर जा रहा है, इसका ध्यान उसे न था ।

मधुकर स्वयं नहीं जानता था कि उसमें इतना परिवर्तन किस प्रकार हो गया ! किस प्रकार वह घनिष्टता, उद्वेलित मंथन के रूप में परिणत हो गई । किस प्रकार उसके हृदय की सारी विचार शक्ति कला की आँखों ने छीन लिया !

धीरे-धीरे हुआ यह सब और मधुकर अनभिज्ञ रहा ।

उसने अपने हृदय की गति प्रबल प्रवाह की धार पर छोड़ दिया ।

और उसका फल यह हुआ कि आज उसका चंचल हृदय परिस्थिति की मादकता को न सम्हाल सका—

उसका तड़फड़ाता दिल बेहोश होकर कला के पैरों पर जा पड़ा—

उसके मदहोश नेत्र कला की जवानों पर जा आँटके—

उसके उल्लासित हाथों ने कला को गठरी-सा समेट लिया । उसके घड़कते कलेजे ने कला के हृदय को अपनी घड़कन सुनाई—

और—

युग-युग के प्यासे अधरों ने कला के अधरों का आलिङ्गन किया ।

उस बात को सोचकर मधुकर का हृदय अत्म-ग्लानि से भर उठा ।

यद्यपि कला ने उसकी इस हरकत पर कोई अप्रसन्नता नहीं प्रदर्शित की थी, वरन् उसके आरक्त मुख पर सुन्दरी लज्जा का नृत्य हो उठा था, जिससे वह और भी आकर्षक लगने लगी थी—

परन्तु मधुकर के ज्ञानतन्तु उसी क्षण उसे बिट्कार उठे ।

उफ ! यह क्या कर डाला उसने !

हाथ मल रहा था वह अपनी नादानी पर ।

“मुझे माफ करना कला— !...” अपनी नादानी की माफी भी माँग ली थी मधुकर ने ।

“ऐसा क्यों कहते हो मधुकर ! मेरा सब कुछ तुम्हारा है...” कह-कर कला ने मधुकर के उस कृत्य पर प्रसन्नता प्रकट की थी ।

परन्तु धिक्कार रहा था मधुकर का हृदय ।

इस समय वह अपने बिस्तर पर पड़ा उन बातों को सोचता हुआ, करवट बदल रहा था ।

आज क्षणिक आवेग में आकर उसने न केवल कला का अपमान किया है, वरन् स्वयं अपने साथ विश्वासघात किया है ।

और छल किया है उस कोमल कलिका के प्रति जिसका सर्वस्व उसने भ्रमर बनकर उस अँधेरी काली रात में लूटा था ।

कंचनमाला !

कंचन की याद आते ही मधुकर का सारा शरीर सिहर उठा ।

इतने दिनों तक मधुकर को कंचन की सुघ आँई ही न थी—

और अगर आँई भी थी तो इतनी क्षणिक थी वह कि उसने उसपर कुछ ध्यान ही न दिया था ।

कुछ दिनों तक तो वह अपनी माँ के मरने पर शोकाकुल रहा । फिर बम्बई आया, तो आवश्यक कार्यों में इतना व्यस्त हो रहा कि वह कंचन से किये हुए अपने वादे को विस्मृत कर बैठा ।

कला का साथ, उसकी शोखियाँ उसके याँवन आदि ने उसके विस्मरण में सहायता पहुँचायी ।

मगर आज कंचन की याद उसे इस तरह सता रही थी, जैसे कलेजे में आग की लपटें उठ रही हों ।

वह लड़खड़ाता हुआ उठा । मेज के पास आ बैठा । जीवन को पत्र लिखने लगा वह—

“मैं बहुत लज्जित हूँ कि तुमसे शीघ्र आने का वचन देकर भी मैं, आना तो दूर रहा, तुम्हें पत्र भी न लिख सका । तुम्हारे यहाँ से आने

पर मैंने देखा कि मेरी माँ बगैर मुझसे मिले ही चल बसी है। बहुत दुख हुआ इस घटना से।

माँ के मर जाने पर अब जीविका का प्रश्न मेरे सामने आया। यद्यपि तुमने भी मेरी सहायता का वचन दिया था—परन्तु उस समय मैं इतना विक्षिप्त हो रहा था कि उचित अनुचित का ध्यान ही जाता रहा था।

सो एक दिन मैंने कलाकुमारी को उसके बैंक में नौकरो करने की स्वीकृति दे दी। कला को तो तुम जानते ही हो—वही तुम्हारे हृदय-मन्दिर की देवी—मगर तुम्हारे लिये तो वह पत्थर निकला।

आजकल मैं बम्बई में उसी के बैंक में कार्य कर रहा हूँ। मैंने जिंग डाइरेक्टर के पद पर हूँ और पाँच सौ वेतन है। आगे और भी उन्नति की आशा है।

कंचनमाला से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। आशा है कि शीघ्र ही तुम लोगों के दर्शन कर सकूँगा।

एक बात जो बहुत आवश्यक और महत्व की है, उसे लिखने में मुझे कुछ लज्जा और कुछ सुंकोच का आभास हो रहा है।

फिर भी लिख रहा हूँ, क्योंकि मुँह-जबानी कहने में तो और भी लज्जा का बोध होगा।

तुम मेरे मित्र हो। आशा है तुम मेरी इस बात पर ध्यानपूर्वक विचार कर उत्तर दोगे, क्योंकि यह मेरे जीवन भर की सुख शान्ति का प्रश्न है।

तुम जानते ही हो कि अपने हृदय पर मनुष्य का अधिकार नहीं होता—वह जब किसी पर मुग्ध हो जाता है, तो हृदय को सम्हालना मनुष्य के लिये असम्भव हो जाता है।

क्या मैं अपनी मित्रता के बल पर, तुमसे, जीवन भर के लिये कंचनमाला को माँग सकता हूँ ?

आशा है तुम अस्वीकार न करोगे—क्योंकि यह दो हृदयों की अभिलाषा का यह प्रश्न है।

तुम्हारे पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—

तुम्हारा अनन्य—

—मधू ।

दूसरे दिन यह पत्र डाक से छोड़ दिया गया ।

दस बजे जब मधुकर आफिस पहुँचा, तो कला पहले ही आ पहुँची थी । आज उसने नवीन आकर्षक परिधान धारण किया था । कदाचित् कल के मधुकर की उस हरकत को और भी प्रोत्साहन देने के लिये ।

मगर मधुकर उस दिन अतिशय गम्भीर था । कला की ओर देखे बिना ही वह अपनी कुर्सी पर जा बैठा ।

“गुडमार्निङ्ग सर !” कला ने व्यंगात्मक भाव से कहा ।

“.....”

मगर मधुकर चुप रहा ।

तो कला ने सर उठाकर देखा ।

देखा—कि एक ही रात में मधुकर में विचित्र परिवर्तन हो गये हैं । सर के बाल रुवड़े हो रहे हैं, जैसे उसने स्नान न किया हो—

आँखें लाल-लाल हैं, जैसे वह रात भर तक जागता रहा हो—

मुखाकृति गम्भीर है, जैसे किसी गहन चिन्ता ने उसे उद्वेलित कर रखा हो—

“तुम्हें क्या हो गया है—ऐसे क्यों हो रहे हो ?”—कला मधुकर के पास जाकर सस्नेह बोली ।

“तुम जाकर अपना काम करो कला !”—स्वर रुखा था मधुकर का ।

कला को दुख हुआ, मधुकर की अवहेलना देखकर । वह लौटकर अपनी कुर्सी पर आ बैठी ।

चार दिन व्यतीत हुए—

इस बीच कला और मधुकर के मध्य केवल आवश्यक बातें हुईं, जो बैंक के काम से सम्बन्धित थीं ।

एक भी बेकाम की बात न हुई। सिनेमा जाना, सैर-सपाटे करना आदि एकदम से बन्द हो गया।

कला और मधुकर एक दूसरे के इतने पास होते हुए भी, मानों बहुत दूर थे।

कला अत्यन्त दुःखी थी—मधुकर का वह खिंचाव देखकर। वह मधुकर की रुष्टता का कारण न समझ सकी थी। मधुकर के हृदय पर जो कुछ बीत रहा था, उससे वह सर्वथा अनभिज्ञ थी।

चाहती थी कला कि वह मधुकर से उसके दुःख का कारण पूछे, परन्तु उसकी गम्भीरता के आगे उसे कुछ पूछने का साहस नहीं होता था।

पाँचवें दिन—

मधुकर और भी गम्भीर था। आँतें ही कुर्सी पर बैठ गया और न जाने किन विचारों में तल्लीन हो गया।

आज कला ने मधुकर से बातें करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। मधुकर की वह गम्भीरता उसे असह्य हो उठी थी।

वह उठकर मधुकर के पास आई। नम्र स्वर में पूछा—“क्या सोच रहे हो...”

“कुछ तो नहीं!”—कहा मधुकर ने।

“कुछ मुझे भी तो बताओ कि तुम क्या सोचा करते हो—तुम्हें किस बात का दुःख है—तुम्हें क्या कष्ट है!...”

“तुम व्यर्थ परेशान हो रही हो कला!”—स्वर में नम्रता भरकर बोला मधुकर—“मुझे कोई कष्ट, कोई दुःख नहीं है...”

“झूठ तो तुम मुझसे कभी नहीं बोलते थे मधू... आज यह पहला अवसर है जब कि तुम मुझसे झूठ बात कह रहे हो...”

“झूठी बात!....”

“और नहीं तो क्या!”—कला भीगे स्वर से बोली—“मैं देख रही हूँ कि तुम स्वयं तड़प रहे हो और मुझे भी तड़पा रहे हो—तुम स्वयं

जल रहे हो और मुझे भी जला रहे हो....मुझे किस अपराध का दण्ड दे रहे हो मधुकर !...”

“कला !...” मधुकर का हृदय कला की बेकली देखकर भर आया । वह उठकर खड़ा हो गया । कला का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाता हुआ बोला—“ऐसा न कहो कला !...तुम मुझे समझने में गलती कर रही हो...”

“मधू !...”

कला लुढ़क कर मधुकर की छाती पर आ रही । मधुकर ने उसे अपनी बाँहों में सम्हाल लिया, प्रतिवाद न किया ।

कला के कोमल शरीर का मादक सम्पर्क, मधुकर के लिए एक नवीन उत्तेजना की सृष्टि कर गया—

और उसके हाथों ने, कब, कला के फूल से बदन को सीने से लगा लिया, यह वह स्वयं न जान सका ।

“कला !...” स्वस्थ होकर बोला मधुकर—“रिफ्रेशमेण्ट रूम में जाकर कुछ नाश्ता कर लो । एक कप चाय पीते हो तुम्हारा आवेग दूर हो जायगा...”

परन्तु कला का आवेग मधुकर के आलिंगन से ही दूर हो चुका था, फिर भी वह मधुकर को प्रमत्त देखना चाहती थी और इसलिये वह चाय पीने चली गई ।

मधुकर कुर्सी पर बैठकर पुनः गम्भीर विचारों में निमग्न हो गया । उस दिन अपने जिस कृत्य पर मधुकर को महान् ग्लानि हुई थी, वही कृत्य आज अभी-अभी, वह कला के साथ पुनः कर बैठा था ।

परन्तु क्या करे मधुकर अपने नादान हृदय को—जो इतना कमजोर था कि परिस्थिति की मदहोशी और यौवन का आवेग नहीं सम्हाल सकता था ।

विवश था मधुकर अपने हृदय से ।

फिर भी मधुकर के अन्तराल के किसी कोने में सद्भावना जाग-रूक थी ।

मधुकर की विचार-धारा भंग हो गई, कला को दौड़ते हुए आफिस रूम में आया देखकर ।

“क्या है कला !—” पूछा मधुकर ने ।

“.....”

चुप रही कला । हाँफ रही थी वह । कलेजा जोंगों से घटकने के कारण पुष्ट वक्षस्थल तेजी से उठ-बैठ रहे थे । चेहरा आवेशमय हो रहा था । वदन प्रकम्पित था ।

मधुकर उठकर कला के पास आया और उसका हाथ पकड़कर अपनी कुर्सी पर बैठाता हुआ प्यार से पूछा—“क्या बात है ? कला मुझे बताओ...”

हाँफती हुई बोली—“उसने मेरा अपमान किया है मधुकर !...”

“किसने ?—”

“दिनेश ने....”

“तुम्हारा अपमान किया है उसने ? किस तरह, केवल शब्दों द्वारा या कार्यों द्वारा भी ?...” पूछा मधुकर ने ।

“दोनों प्रकार से...” कला ने कहा—“अगर मुझ में शक्ति होती तो उसका खून पी जाती...”

मधुकर उत्तेजित हो उठा ।

कला का अपमान वह देख-सुन नहीं सकता था ।

पूछ बैठा—“उसने क्या कहा और क्या किया !...”

“क्या करोगे जानकर ?....उन बातों के कहने में लजा आती है...” कला ने कहा—“मुझे प्राइवेट रूम में बुलाकर वह ऊलझल बातें बकने लगा । जब मैंने रोका, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और अपनी छाती पर रखकर बोला—“कला ! इस कलेजे की धड़कन सुनो, इस हृदय की ब्यथा देखो—मैं तुम्हें प्यार करता हूँ रानी !”—

इतना कहकर उसने मेरे हाथों को खींचा और सम्भल सकने के पूर्व ही मैं उसके सीने पर लुढ़क पड़ी ।”

“शैतान का बच्चा ।”

मधुकर ने क्रोध से दाँत पीसा । उनकी बलिष्ठ भुजायें उत्तेजित हो काँप उठीं । उसकी उँगलियाँ फालिंग बेल पर जा पड़ी ।

चपरासी उपास्थित हुआ ।

“दिनेश को बोलो कि डाइरेक्टर साहब बुला रहे हैं...” मधुकर ने चपरासी से कहा ।

चपरासी बाहर चला गया ।

“दो मिनट बाद दिनेश ने उस कमरे में प्रवेश किया । तीव्र स्वर में उसने पूछा — “क्या है मधुकर ! क्यों बुलाया मुझे !...”

मधुकर उसकी बेअरदबी देखकर क्रोधित हो उठा । बोला — “अदब से बातें करो और समझो कि तुम किसके सामने खड़े हो...”

“मैं खूब समझता हूँ !” — घृणापूर्वक बोला दिनेश — “अपनी प्रशंसा की ढोल अपने से नहीं पीटी जाती मधुकर...क्या तुम जबरदस्ती लोगों से अपनी इज्जत कराना चाहते हो...”

“तुम्हारा मतलब ?” — पूछा मधुकर ने ।

“मतलब यह है कि जिसे धूल से लिपटते देख चुका हूँ, उसे सर पर चढ़ते नहीं देख सकूँगा...पैर की ठोकर खाकर धूल मस्तक पर चढ़ जाती है, मगर उसकी इज्जत नहीं बढ़ जाती ?” दिनेश ने कहा । उसके नेत्र ज्वाला उगल रहे थे ।

“चुप रहो !” ...गरज पड़ा मधुकर — “तुमने कला का अपमान क्यों किया ? इस बात का जबाब दो मुझे ?” —

“तुम कौन हो जबाब तजब करनेवाले ?” — दिनेश कहने लगा — “यह हमारी और कला की आपसी बातें हैं, उन्हें जानने का तुम्हें अधिकार क्या है ? मैं कला का रिश्तेदार हूँ...तुम कौन होते हो ?...”

“कला मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी है....”

“स्क्रेटरी !” घृणा से मुँह सिकोड़ा दिनेश ने—“यह क्यों नहीं कहते कृतधन ! कि कला तुम्हारी अन्नदात्री है। यह भूले क्यों जाते हो कि आज कई साल से तुम्हारा यह शरीर कला के टुकड़ों पर पल रहा है...”

“मधुकर !”—कला बेबसी भरे स्वर में बोलो—“इसके मुँह न लगे। जाने दो उसे....”

“मेरी बातों का ठीक-ठीक जवाब दो !”—मधुकर ने गरज कर दिनेश से कहा।

“तुम्हारी हर एक बात का मैं पूरा-पूरा जवाब दे रहा हूँ...” दिनेश बोला।

“तुमने कला का अपमान किया, अब मेरा भी अपमान कर रहे हो...”

“तुम्हारे अपमान का मेरे सामने कुछ भी मूल्य नहीं....”

“शट अप दिनेश !....” मधुकर क्रोध से चिल्ला पड़ा।

“यू शट अप मधुकर !...”

दिनेश दो पग और आगे बढ़ आया।

मधुकर भी पूर्णतया क्रोधित हो उठा था।

कला देख रही थी कि बात जोर पकड़ती जा रही है। उसने मधुकर का हाथ पकड़ लिया, परन्तु मधुकर अपना हाथ छुड़ाकर दिनेश के पास आ खड़ा हुआ।

“मैं कहता हूँ दिनेश ! कि चुपचाप यहाँ से वापस चले जाओ !”—गरजा मधुकर।

“तुमने मुझे कायर समझा है क्या...क्या कर लोगे तुम मेरा !”

“बताऊँ क्या कर लूँगा !”—दाँत पीसा मधुकर ने।

“बताओ....” दिनेश ने अपनी आस्तीन ऊपर चढ़ाई।

मधुकर को अब अपना क्रोध सम्हालना असम्भव हो गया। अंतिम

बात दिनेश के मुख से निकलतै ही, मधुकर का एक जबरदस्त घूँसा दिनेश की कनपटी पर जा बैठा ।

दिनेश का माथा चकरा गया ।

मधुकर अपने कालेज में बाक्सिंग चैम्पियन था, तो भला उसके घूँसे की चोट दिनेश कैसे सम्भाल सकता !

दिनेश लड़खड़ाते-लड़खड़ाते बचा । उसने मधुकर पर चोट करने के लिये हाथ उठाया, परन्तु मधुकर ने उसका उठाया हुआ हाथ पकड़ कर इस प्रकार पीछे मोड़ दिया कि दिनेश चिल्ला उठा :

मधुकर ने उसे बाहर ढकेल दिया ।

दिनेश उठ खड़ा हुआ । बोला—“चुटीला सॉप अपनी चोट कभी नहीं भूचता मधुकर ! एक न एक दिन तुम डँसे जाओगे...”

और वह लड़खड़ाता हुआ रायसाहन सेठ बिहारीलाल के आफिस की ओर बढ़ चला ।

मधुकर कुर्सी पर बैठकर, एक सिग्रेट जलाकर पीने लगा ।

उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ । कला भी शान्त हुई ।

“कितना शैतान है, यह दिनेश !...” कला बोली,

“उसकी शैतानी अब भूल जायगी....” मधुकर ने कहा ।

उसी समय सेठजी के चपरासी ने भीतर प्रवेश किया ।

“आप दोनों को सेठजी याद कर रहे हैं...” चपरासी ने अभिवादन कर कहा ।

मधुकर और कला का माथा ठनका ।

दोनों सेठजी के आफिस रूम में आये ।

सेठजी अतिशय गम्भीर मुखाकृति लिए कुर्सी पर बैठे थे । अस्त-व्यस्त दिनेश पास ही खड़ा था ।

कला और मधुकर उनके पास जाकर चुपचाप खड़े हो गये ।

सेठजी ने सर उठाकर उन दोनों की ओर एक क्षण तक देखा और पुनः सर नीचा कर लिया ।

सारी बातें दिनेश ने खूब चढ़ा-बढ़ाकर सेठजी से कही थी और सेठजी के अन्तःकरण में इस समय विचारों का संघर्ष हो रहा था।

मधुकर को वह बहुत चाहते थे—

और दिनेश उनके रिश्तेदार का लड़का था।

परिस्थिति अत्यन्त जटिल हो गई थी।

मधुकर के मतिष्क ने ही बैंक की इतनी उन्नति की थी—वह अत्यन्त कार्यकुशल व्यक्ति था।

और उधर दिनेश के पिता ने सेठजी को अत्यन्त विनम्र शब्दों में लिखा था कि “दिनेश को अपना ही बेटा समझ कर रखियेगा और उसकी देख-भाल कीजियेगा”—

सेठजी ने सर उठाया। दिनेश से गम्भीर स्वर में बोले—“तुम जाकर अपना काम करो...”

दिनेश चला गया, सर नीचा किये हुए—मगर उसकी आँखें आँगारे की तरह जल रही थीं।

“मधुकर !” सेठजी ने मधुकर की ओर देखा।

“जी, बाबू जी !....”

“जी, बाबूजी नहीं—यस सर कहो...” सेठजी रुखी आवाज में बोले—“मेरे निकट आकर बैंक के नियमों का उल्लंघन न करो...”

“सर ! मैं क्षमा चाहता हूँ...” मधुकर बोला।

“तुमने बैंक की शान्ति में बाधा डाली है—ऐसा क्यों हुआ ?”—पूछा सेठजी ने।

“बात यह है पिताजी...”

“तुम चुप रहो कला !”—सेठजी ने कला को बीच ही में रोक दिया—“मैं मधुकर से बातें कर रहा हूँ...हाँ ! मुझे सारी घटना बताओ मिस्टर मधुकर...”

आज यह पहला अवसर था जब कि मधुकर को सेठजी ने मिस्टर मधुकर कहकर पुकारा था।

मधुकर ने संक्षेप में सारी घटना सुना दी । दिनेश द्वारा कला के अपमान करने की बात एकदम खिपा ली, क्योंकि वह कला की इज्जत का सवाल था—केवल यह कह दिया कि दिनेश ने कला से ऐसी बातें कहीं, जो अनुचित थीं ।

“मिस्टर मधुकर !”—बोले सेठजी—“तुम कबूल करतै हो कि तुम्हीं ने दिनेश पर धूँ से चलाये उसने एक भी बार न किया तुम पर...”

“वह बार करना चाहता था सर !”—मधुकर ने कहा—“मगर मैंने उसे अवसर न दिया...”

“मगर मार-पीट प्रारम्भ करनेवाले तो तुम्हीं थे न ?”—

“.....”

चुप रह गया मधुकर ।

“वह बातें कर रहा था तुमसे, तुम भी उसकी बातों का जवाब देते !...या मेरे पास आते...ऐसा न करके उसके ऊपर हाथ क्यों छोड़ा ?”

“.....”

“मैं उत्तर चाहता हूँ मिस्टर मधुकर !...”

“उसकी बातें मेरी सहनशीलता को पार कर गई थीं सर !...”

“तुम यह जानते थे न ! कि वह मेरा रिश्तेदार है—फिर तुम्हें उसके साथ उलझने का साहस कैसे हुआ !...”

“मैं बहुत शरमिन्दा हूँ सर !...”

धीरे से कहा मधुकर ने ।

सेठजी ने स्थिर दृष्टि से मधुकर की ओर देखा, फिर पैड में से एक कागज निकालकर उसपर कुछ लिखने लगे ।

लिख चुकने पर उन्होंने वह कागज मधुकर की ओर बढ़ा दिया ।

बोले—“मिस्टर मधुकर ! तुम्हारे बहुत से उपकार बैंक के ऊपर हैं, इसलिए मैं कृतघ्न होकर तुम्हारे साथ कोई कड़ा स्टेप नहीं लेना चाहता

...मगर मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम्हारा और दिनेश का वैमनस्य बढ़ता जाय..."

चुपचाप सुन रहा था मधुकर ।

सेठजी का स्वर अब कोमल हो चला था ।

“इसलिये तुम्हारा तबादला पूना ब्रांच मैनेजर के पद पर किये दे रहा हूँ । वहाँ तुम्हारे सेक्रेटरी का कार्य मिस आइडा रिबेला सम्हालेगी और मिस्टर टामसन यहाँ आकर मैनेजिंग डायरेक्टर का पद ग्रहण करेंगे तथा कला उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी होगी....”

“पिताजी !...” कला ने कुछ कहना चाहा ।

“बेटा !” सेठजी बोले—“मैं विवश हूँ । सारा मामला शान्त होते ही मधुकर पुनः यहाँ आ जायगा, या तुम्हीं पूना भेज दी जाओगी... जाओ, तुम लोग !...”

मधुकर और कला दुःखित हृदय लिए अपने आफिस में आये । एक दूसरे से बिछुड़ने का दोनों को दुःख था ।

मगर विवशता थी ।

मधुकर का हृदय अत्यन्त व्यथित हो उठा, न जाने क्यों !

पाँच बजे वह अपने डेरे पर आया, तो नौकर ने आज की डाक से आया हुआ एक लिफाफा उसके आगे रख दिया ।

पत्र जीवन का था—देखते ही मधुकर का हृदय एक क्षण के लिए हर्षित हो उठा । पढ़ने लगा जल्दी-जल्दी—

यह लिखा था—

निर्मोही मित्र !

पाँच महीने की प्रतीक्षा के बाद तुम्हारा पत्र मिला । बड़ी प्रसन्नता हुई । मैंने सोचा कंचन तुम्हारा पत्र देखकर कितनी खुश होगी । बेचारी तुम्हारे लिए कितना व्यग्र, कितनी उदास, कितनी व्यथित थी—यह मैंने अपनी आँखों देखा था ।

अतः मैंने झटपट कारखाने का काम निपटाया, और तैजी से बग़ी

घर की ओर बढ़ने की आज्ञा दी ! खुशी से मैं पागल हो रहा था उस समय । क्योंकि मुझे अपनी मरती हुई बहन के लिए अमृत मिल गया था !

थोड़ी ही देर बाद बगी मेरे बँगले के सामने आ खड़ी हुई । मैं तेजी से उतर पड़ा और झपटता दरवाजे पर आया ।

“कंचन !”

मैंने दरवाजे पर से हाँ पुकारा !

परन्तु मेरी पुकार का किसी ने उत्तर न दिया ।

मैं मकान के अन्दर भागा, यह कहता हुआ—“कंचन ! इधर आ देख मैं तेरे लिए क्या लाया हूँ...”

मगर कोई मेरे सामने नहीं आया ।

“कंचन ! ...” मैंने जोरों से पुकारा ।

“कंचन ! ...”

बँगले का वायुमंडल प्रतिध्वनित हो, मेरा उपहास कर उठा, मुझे आश्चर्य हुआ कंचन की यह चुप्पी देखकर ।

क्या कर रही है ऊपर !—मैं सोचने लगा ।

धड़कता हुआ सीढ़ियाँ चढ़कर उसके कमरे में पहुँचा । देखा—कमरे में कोई न था । केवल निर्जीव सामान इधर-उधर पड़े हुए थे ।

मेरा जी धक्क से हो गया ।

कंचन गई कहाँ !

“कंचन...कंचन...कंचन...”

मैं चिल्लाते-चिल्लाते पागल हो गया, परन्तु कंचन की वह मधुर आवाज ‘आई भैया’ मेरे कानों में न पड़ी ।

हृदय तीव्र आशंका से भर उठा !

धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आने लगा । सोचा शायद बगीचे में हो ।

धोती में पैर पँस गये और मैं धम्-धम् लुढ़कता हुआ पचीसों सोढ़ियों नीचे आ गिरा ।

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुझे पैर ही न हों । मैं उठ नहीं सकता था । मैंने नौकरों को पुकारा ! सब घबड़ाये हुए दौड़े आये । एक ने मुझे सहारा देकर उठाया ।

मैंने चलने के लिए पैर बढ़ाना चाहा, तो असह्य यन्त्रणा से चीख उठा ।

एक नौकर की पीठ पर चढ़कर मैंने बाग का जर्जर-जर्जर, बँगले का कोना-कोना खोज डाला—परन्तु कंचन न मिली, न मिली ।

“चली गई कंचन !....कंचन चली गई, मुझे छोड़कर....”

मेरा हृदय चीत्कार कर उठा । मैं बेहोश-सा होकर गिर पड़ा । मेरी टाँग टूट गई थी मेरा दिल टूट गया था ।

दो दिन तक मैं पागल-सा बैठा रहा, टूटी टांग पर खपन्ची लगाये । मेरे वफादार नौकर शहर में चारों ओर दौड़ते रहे—

शहर की हर गली, सड़क, नदी, नाले, सरोवर, कुएँ—सब जगह खोज की गई—

मगर कंचन न मिली ।

उसकी लाश भी न मिली !

मेरी लुटी हुई शान्ति भी न मिली ।

लुटेरे मधुकर ! आज मैं अपनी टूटी टांग और तड़पता दिल लेकर आँसू बहाता हुआ पलंग पर बैठा हूँ और तुम्हें जी भरकर गालियाँ दे रहा हूँ ।

तुम्हीं ने मुझे लूटा ।

तुम्हीं ने मुझे नष्ट किया ।

तुम्हीं ने मुझसे मेरी बहन को छीना—

निर्दयी शैतान ! अगर तुम मेरे पास होते, तो निश्चय ही तुम्हारा

खून कर डालता—परन्तु अफमोस है कि मैं पलंग में उठ भी नहीं सकता और तुम काले कोस जा बसे हो ।

तुम मरो, सिसको, तड़पो यही मेरी आकांक्षा है, यही मेरा आप है । अब तुम मेरे पान कभी न आना और यदि आना तो अपनी जान हथेली पर लेकर आना...

मधुकर ! यह क्या किया तुमने ! किस जन्म का घेर चुकाया मुझसे ! छलिया ! तुमने छल करके मेरी बहन की जान ले ली ।

आस्तीन के सॉप ।

मैं हूँ तुम्हारा मित्र (१)

—जीवन ।

पत्र के अक्षर जगह-जगह से फैले हुए थे और आँसू की बूँदे गिरी हुई साफ मालूम पड़ रही थीं !

कदाचित् पत्र लिखते समय जीवन जोर-जोर रोया था ।

पत्र समाप्त कर मधुकर ने उसे मेज पर रख दिया । और चारपाई पर गिरकर आँसू बहाने लगा ।

तकिये का लिहाफ भीग गया, परन्तु मधुकर रोता ही रहा, रोता ही रहा ।

उसने जो कुछ किया था—उसके लिये उसे महान् ग्लानि हो रही थी—दारुण पश्चाताप की ज्वाला उसके नेत्रों द्वारा आँसू बनकर निकल रही थी ।

कंचन !....मेरी !....कंचन !....तुम कहाँ होगी...तुम घर से क्यों चली गई !...मैंने पत्र लिखने में देर अवश्य कर दी, पर तुम्हें प्रतीक्षा करनी चाहिए थी ! क्यों तुमने आत्महत्या कर ली ! तुमने तो अपनी जान देकर सारे कष्टों से छुट्टी पा ली और मुझे जीवन भर के लिए तड़-पता हुआ छोड़ गई !...ऐसा तुमने क्यों किया कंचन !...क्यों किया ऐसा !...

रात भर मधुकर रोता और बड़बड़ाता रहा ।

पूना के शंकर मेठ रोड पर सागर बैंक लिमिटेड का ब्रांच आफिस था। उस विशाल भवन में बैंक का कारबार होता था।

आज ही मधुकर बम्बई से वहाँ आया था और ब्रांच मैनेजर का काम सम्हाला था। मिस आइडा रिबेला उसकी सेक्रेटरी थी। मिस्टर टामसन मैनेजिंग डाइरेक्टर का पद ग्रहण करने हेतु आफिस चले गये।

रिबेला ने आज पहले-पहल पूना में मधुकर को देखा, तो वह उसे पहचान ही न सकी। ऐसा लगता था, जैसे वह महीनों तक बीमार रहा हो।

उसके मुख पर की सागी रौनक काफूर बनकर उड़ गई थी।

“आपकी तबीयत इधर खराब थी क्या ?”—रिबेला ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर में पूछा।

“जी नहीं !...” मधुकर ने उत्तर दिया—“तबीयत मेरी कभी खराब नहीं हुई...”

रिबेला ने मधुकर के सामने कुछ टाइप किये हुए कागज ला रखे थे और मधुकर उनपर हस्ताक्षर कर रहा था।

हस्ताक्षर कर चुकने पर उसने कागज रिबेला की ओर बढ़ा दिये।

रिबेला कागज लेकर गई नहीं, खड़ी रही।

“पिछले महीने बैंक की तरफ़ी के लिये आपने जो स्कीम बनाई थी, वह तो बहुत कामयाब रही...”—रिबेला बोली।

“घन्यवाद !...” मधुकर ने कहा।

“दरअसल वह आप ही जैसे दिमागदार का काम था, वरना और कोई उसे सोच ही नहीं सकता था... मिस्टर टामसन भी आपकी तारीफ़ कर रहे थे !”—

“अच्छा !...” आश्चर्य हुआ मधुकर को।

“जी हाँ !... उन्हें आपके दिमाग पर डाय होने लगा था...”

“आप वह कुर्सी खींचकर बैठ जाइये—खड़े-खड़े कब तक बातें कर सकेंगी आप !”

“थैंक्यू मिस्टर मधुकर !”—रिबेला बोली आँखों पर कटाक्ष का तीर चढ़ाकर—“मेरे पैर कभी थकते नहीं...आपकी मिहरबानी के लिये बहुत-बहुत शुक्रिया !...”

“आप यहाँ रहती कहाँ हैं मिस रिबेला !”—

“मैं पास ही के एक मकान में रहती हूँ !”—रिबेला बोली—
“आप कहाँ ठहरे हैं...”

“पंजाब होटल में अभी डेरा डाल दिया है—आगे देखा जायगा ”
मधुकर ने कहा ।

“होटल में ?”—आश्चर्य से बोली रिबेला—“आपने होटल में डेरा डाला है !...क्यों ?...आपको मुझे बताना चाहिये था...”

“आप क्या मेरी मदद कर सकेंगी !”—पूछा मधुकर ने ।

“मैं एक बड़े से मकान में अकेली रहती हूँ...”—आँखों में शरा-रत का भाव और दोठों पर मधुर हास्य छिटकाकर बोली रिबेला—
कभी-कभी आँखें रातों में मुझे बहुत डर लगने लगता है । मेरे पास कोई नहीं होता कि कम-से-कम उसकी उपस्थिति से अपना डर दूर कर सकूँ”

दोनों हँस पड़े ।

रिबेला की बातचीत में, सुरत में, चाल-ढाल में, आकर्षक एवं माधुर्य था, जिससे मधुकर की म्लान मुखाकृति प्रस्फुटित हो उठी ।

“अगर आप मेरे साथ रह सकें, तो बड़ी मिहरबानी होगी मिस्टर मधुकर !...”

रिबेला के स्वर में कुछ कम्पन और प्रार्थना का सम्मिश्रण था, जिससे मधुकर उसकी बात अस्वीकार न कर सका ।

उसी दिन शाम को मधुकर अपना सब सामान मँगवाकर रिबेला के घर चला आया ।

कुछ ही देर की संगत से मधुकर जान गया कि रिबेला विचित्र स्वभाव की लड़की है ।

सौन्दर्य उसका जितना उज्ज्वल है, उससे कहीं अधिक उज्ज्वल है उसका हृदय !

दूसरे दिन प्रातःकाल जब मधुकर की नींद टूटी, तो उसने देखा कि रिबेला पहले ही उठ चुकी है और स्टोव के पास बैठी हुई अपने हाथ से मधुकर के लिये चाय तैयार कर रही है ।

“आप चाय बनाने का कष्ट क्यों कर रही हैं !” — कहा मधुकर ने ।

“क्योंकि नौकरों के हाथ की चाय आपको अच्छी न लगेगी !” — रिबेला ने कहा — “बम्बई में तो आपकी वाइफ आपके लिये चाय तैयार करती रही होगी ? है न !...”

“जी नहीं । मेरी शादी अभी नहीं हुई है !” मधुकर बोला ।

“ओह !...” कहती हुई रिबेला के कपोल आरक्त हो उठे ।

मधुकर आध घण्टे बाद गुसलखाने से नहा-धोकर बाहर आया, तो चाय मेज पर तैयार थी ।

दोनों साथ-साथ चाय पीने लगे ।

“आप बहुत मीठी चाय बना लेती हैं...” मधुकर ने रिबेला के मुख की ओर देखते हुए कहा ।

“आपके पास शीरों जवान है, इसलिये चाय मीठी लग रही है !” मुस्कुराहट के साथ रिबेला बोली — “वरना चाय तो नमकीन बनी है...”

“नमकीन ?” —

“जी हाँ ! आपके चेहरे की तरह !” — मधुर हँसी हँस पड़ी रिबेला ! दन्त पक्तियों अनारदाने की तरह बिखर पड़ीं ।

उस दिन खाना भी रिबेला ने अपने हाथों से ही बनाया । मगज बिरयानी और पराठे तैयार किये थे ।

सराहना कर-करके खाया मधुकर ने ।

आफिस का समय हुआ तो रिबेला ने अपने ही हाथों उसे कमोज पहनाई, टाई बाँधा, और कोट पहनाया।

इसके बाद ब्रस लेकर मधुकर का जूता साफ किया और उसे उसके पैर में चढ़ा दिया।

मधुकर रोकता ही रहा, मगर रिबेला ने सुना नहीं।

आज मधुकर को, रिबेला का व्यवहार देखकर, अपने माँ की याद हो आयी। उसकी माँ भी इसी तरह उसकी देख-रेख करती थी।

घारे घीरे दिन सरकते गये।

रिबेला ने मधुकर के हृदय में अपना एक खाम स्थान बना लिया। मधुकर यह जान न सका कि पश्चिमीय सभ्यता में रंगी एक ऐंग्लो इण्डियन युवती, उस जैसे काले आदमी से क्या चाहती है !

फिर भी रिबेला के प्रति कृतज्ञ था।

घीरे-घीरे मधुकर रिबेला का आपसी व्यवहार घनिष्टा में परिणत हो गया।

और एक दिन—

“एक बात पूछूँ मिस्टर मधुकर !—” आफिस में रिबेला ने पूछा।

“पूछिये न !..”

“ठीक जवाब मिलेगा !..”

“आपके हुक्म की तामील न करूँ, यह क्या मेरे वश की बात है मिस रिबेला !—” मधुकर ने कहा।

“आपने अब तक किसी को प्यार किया है !—”

“.....” रिबेला के इस प्रश्न पर चौंक पड़ा मधुकर।

“मेरा मतलब यह है कि आप अपनी शादी के बारे में कुछ विचार रखते हैं या नहीं !..”

“क्या कीजिएगा जानकर मिस रिबेला !..वे दुःखभरी कहानियाँ हैं। न दुहराया जाना ही अच्छा है..”

मधुकर ने एक दुःखपूर्ण दीर्घ निश्वास ली।

“मेरा मतलब आपको दुःख पहुँचाना नहीं था मिस्टर मधुकर ! मैं माफी चाहती हूँ...” रिबेला ने मुलायमित से मधुकर के कंधे पर अपना हाथ रख दिया । अवयव मधुकर के शरीर के एक दम पास आ रहे । “मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है । अगर मेरे जरिए आप अपना पुराना गम भूल सकें, तो मैं आपके लिए हर काम करने को तैयार हूँ—”

“शुक्रिया मिस रिबेला !...” मधुकर ने कहा ।

रिबेला के प्यासे अघर मदहोशी से तड़फड़ा रहे थे ।

“मधुकर ! मेरी ओर देखो...” विह्वल स्वर में बोली रिबेला—
“मुझे हुक्म दो, तो मैं तुम्हारा सारा गम अपने सीने से समेट लूँ...”
“.....”

“तुम्हारा साग दुःख अपने दिल में भर लूँ !”

“.....”

“बोलो मधुकर !...”

रिबेला ने मधुकर को अपनी फूल-सी बांहों में कस लिया ।

“डियर मधुकर !...”

रिबेला के होंठ जैसे युग-युग से प्यासे हों, कि मधुकर के होठों पर बैठे, तो बैठे ही रह गये ।

मधुकर की अजीब दशा थी ।

वह चुपचाप खड़ा था पत्थर की तरह । रिबेला को उसने अपने से दूर भी नहीं किया था ।

रिबेला की फूल-सी बांहें उसे चारों ओर से घेरे थीं—

उसके आतुर अघर मधुकर के होठों का आलिगन कर रहे थे—

बेहोश-सी हो रही थी रिबेला । मधुकर ने धीरे से उसे अपने से अलग किया और बोला—“मिस रिबेला !...”

“डियर मधुकर !...” रिबेला आतुर हो बोली ।

“अपने को सम्हालो मिस रिबेला !...” मधुकर ने रिबेला को सचेत करते हुए कहा—“मैं दुखी था । आज तुम्हारे व्यवहार ने मुझे और भी

दुखी कर दिया । अपने हृदय को नियन्त्रित करो मिस रिबेला । इन्सान जो कुछ चाहता है, वह उसे नहीं मिलता और जो कुछ उसे मिलता है, वह उसे नहीं चाहता..."

रिबेला लुपचाप खड़ी थी । उसका आवेश दूर हो चुका था ।



जाते-जाते सूर्य भगवान् समुद्र की सपाट छाती पर मुस्करा रहे थे । समुद्र की लोल लहरें रक्तिम किरणों का आलिंगन कर शान्त लेटी थीं । मैरीन ड्राइव से लेकर चौपाटी तक का सारा दृश्य देखते ही बनता था ।

यों तो प्रतिदिन ही इस स्थान पर हवाखोरों की भीड़ रहती है, परन्तु आज रविवार होने के कारण ऐसा लगता था, जैसे सारी बम्बई ही वहाँ उमड़ पड़ी हो ।

दर्शनीय मेला-सा लग गया था—

रंग-बिरंगे उमड़े हुए दुपट्टे, कुर्ती और सनवार—

दिल लुभानेवाले फ्राक, ब्लाउज और स्लीपर—

इठलाती बलखाती हुई कमर, उन्नत उरोज, पाउडर से पुते गाल, लिपस्टिक से रंजित होंठ—

मरदों की तलाश में घूमती हुई खूबसूरत तितलियों की टोलियाँ—

उनके पीछे गुंजार करते हुए कितने ही मानव भ्रमर—

मदभरे नयनों में अगम प्यास लिये, पुष्ट वक्षस्थलों पर जवानी का भार लादे, मदहोश छोरियाँ—

बम्बई नगरी की सारी सुन्दरता वहाँ एकत्रित हो गई थी ।

ऐसा प्रतिदिन होता था वहाँ—

जब सूर्य, रक्तरंजित प्रदोष के पीछे छुप्त होकर, भयावने अन्धकार को समुद्र के वल्गु पर नृत्य करने का अवसर देता था—

तो उस अन्धकार में कितने ही तड़पते हुए हृदयों का अरमान, अपनी प्रेमिकाओं का आलिङ्गन पाकर, खिल उठते थे ।

भूमि का वह पतला-सा भाग, जो मैरीन ड्राइव के सिलसिले के बाद, दूर तक समुद्र में चला गया है, रात्रि के समय प्रेमियों की लीला भूमि बन जाता था ।

हाँ ! तो आज शिवार होने के कारण दिनेश भी इधर घूमने चला आया था ।

फुलपैन्ट की जेब में हाथ डाले इधर-उधर घूम रहा था ।

इतने ही में एक युवती हाँफती हुई उसके सामने आकर बोली—
“मुझे बचाइये बाबू साहब ! इन गुन्डों से मुझे बचाइये...”

दिनेश की दृष्टि पीछे गई, तो कुछ दूर पर उसने तीन शहरी गुन्डों को देखा, जो उस युवती की ताक में खड़े थे और अब उसे दिनेश से बातें करते देखकर दूसरी ओर देखने लगे थे ।

“क्या बात है मिस !...” दिनेश ने युवती से पूछा ।

युवती एक सुन्दर साड़ी और ब्लाउज पहने थी । आकृति बहुत ही आकर्षक थी ।

“ज्योंही मैं होटल से निकली, ये शोइदे मेरे पीछे पड़ गये ।”—
युवती बोली—“जस में बैठी, तो ये सब भी आकर बगल में बैठ गये । और बौछारें छोड़ने लगे । एक ने तो मेरा हाथ पकड़ लिया और एक ने गन्दी बात कह डाली । तब से ये बराबर मेरे पीछे हैं...”

“आप किस होटल में ठहरी हैं !...” पूछा दिनेश ने ।

“मरीना होटल में ।”

बोली युवती ।

मरीना होटल, मिन्ट रोड पर एक ऐसा होटल था, जहाँ सौन्दर्य

का व्यापार होता था । रुपये के ठीकरों से भोली जवानियाँ खरीदी जाती थीं ।

“आप मरीना होटल में कब से टिकी हैं ?”

“अभी आज ही तो बम्बई आई हूँ ।...” युवती बोली—“बोरी-बन्दर पर एक दलाल मिल गया और मुझे इस होटल में लाया । मैं इस शहर से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ...”

“आपने मरीना होटल में टिककर अच्छा नहीं किया मिस !....” दिनेश बोला—“वह अच्छी जगह नहीं है । तभी ये शैतान आपके पीछे पड़े हैं...”

“मुझे बचाइये बाबूजी ! किसी तरह मेरी रक्षा कीजिये...”

“आप घबड़ाइये नहीं....आइये मेरे साथ...” दिनेश बोला । उसने एक टैक्सी बुलाई । दोनों उसपर जा चढ़े ।

“मिन्ट रोड—मरीना होटल !”—

दिनेश ने ड्राइवर को आज्ञा दी ।

टैक्सी चल पड़ी ।

“आपको मैं किस नाम से पुकारूँ ?” दिनेश ने पूछा ।

युवती थोड़ी देर तक चुप रही । पुनः कुछ सोचकर बोली—“आप मुझे लालिमा कहकर पुकार सकते हैं...”

“मिस लालिमा ! क्या आप अपना परिचय बताने का कष्ट करेंगी ?”

युवती पुनः विचार में पड़ गई ।

बोली—“क्या करोगे मेरा परिचय जानकर बाबू !...एक दुखिया समझकर आप मेरी सहायता कीजिये...”

“आप दुखिया हैं !”—आश्चर्य हुआ दिनेश को ।

“जी हाँ ! दुखिया ही समझिये, जिसे न घर है, न द्वार । बम्बई में रोटी की तालाश में आई हूँ...”

“कहाँ तक पढ़ी हैं आप ?...”

“इन्ट्रेस तक...”

“ओह, तब आप घबड़ाइये नहीं !”—दिनेश बोला—“मैं यहाँ एक बैंक में क्लर्क हूँ। बैंक के प्रोप्राइटर मेरे चाचा लगते हैं। मैं उनसे कहकर आपको भी कोई जगह दिला दूँगा...”

“धन्यवाद !—” लालिमा कृतज्ञता-पूर्वक बोली।

मरीना होटल आ गया। दोनों उतर पड़े। टैक्सी का भाड़ा दिनेश ने चुका दिया। दोनों सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़ने लगे।

“आप किस कमरे में ठहरी हैं...”

“नम्बर तीन में !” लालिमा ने कहा।

“आप अपने कमरे में चलें, मैं मैनेजर से मिलकर आता हूँ....” दिनेश ने कहा।

दिनेश उस होटल में रूप की खोज में अक्सर आया करता था और उस होटल का लम्बा-तगड़ा पंजाबी मैनेजर उसका दोस्त बन गया था।

मैनेजर के पास गया, तो देखा वह शराब के नशे में चूर दो-तीन छोकरीयों को बगल में बैठाये, गपशप करने में व्यस्त है।

“नम्बर तीन में तो अच्छा शिकार आया है मैनेजर साहब !”—बोला दिनेश।

“ओह दिनेश बाबू !”—मैनेजर बोला—“आओ—क्या वह तुम्हें पसन्द है !....”

“जी हाँ ! बहुत...”

“तो कितना देना चाहते हो !”—

“जो माँगें...”

“देखिये !...” मैनेजर बोला—“शिकार नया है—केमली गर्ल है। दाम ज्यादा लगेगा...”

“कोई परवाह नहीं...” दिनेश ने कहा।

“दो सौ !...”

“दे सकता हूँ....मगर एक शर्त पर !”—बोला दिनेश।

“क्या है वह शर्त ।...”

“प्रातःकाल मैं उसे अपने घर ले जाऊँगा...चार रोज वह वहाँ रहेगी—चार सौ और दूँगा आपको...”

“मंजूर है...”

“यह लीजिये पचीस रुपये एडवान्स—बाकी कल दोपहर को...”

“जाइये—”

दिनेश लालिमा के कमरे में आया ।

“क्या हुआ ?”—पूछा लालिमा ने ।

“आज ही चलने से शक हो जायगा उस शैतान को !”—दिनेश ने कहा—“बड़ी लम्बी रकम की लालच दी है उसे ।”

“कितना !...”

“छः सौ रुपये !...”दिनेश ने कहा—“मगर मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ । पचीस रुपये पकड़ा आया हूँ—शेष के लिये बच्चू हाथ मलेंगे...”

“आज हम लोग रहेंगे कहाँ !...”

“इस कमरे में !...”

“पलंग तो एक ही है !....”लालिमा ने कुछ सकुचाते हुए कहा ।

“कोई बात नहीं...आप पलंग पर सो जाइयेगा और मैं आराम कुर्सी पर...”

“जी नहीं—आप मेरा इतना उपकार कर रहे हैं, अतः आपको ही पलंग पर सोना पड़ेगा...”

“जैसी आपकी इच्छा—”

रात के दस बज चले थे । होटल में रुप का बाजार गर्म हो रहा था ।

दिनेश पलंग पर जा लेटा और थोड़ी ही देर बाद सो गया ।

परन्तु लालिमा आराम कुर्सी पर लेटी हुई जागती रही । उसे नींद ही नहीं आ रही थी ।

वह भयभीत हो रही थी ।

उफ़ ! कितनी भयानक जगह है यह !

उसका कलेजा घड़क रहा था । डर से काँपती हुई वह आराम कुर्सी पर बैठी थी ।

इतने में ही पास के कमरे से किसी छोकरी के चिल्लाने की कर्णश्रावाज आई और लालिमा का बदन भय से सिहर उठा ।

“ठीक से बैठो, चुपचाप ! नहीं तो छूरा भोंक दूँगा—” कोई बगल वाले कमरे में कह रहा था ।

“नहीं-नहीं मुझे जाने दो—मुझ पर रहम करो—मुझे न लूटो—” मयभीत हिरणी की तरह कोई युवती कह रही थी ।

“नहीं मानेगी तू !...” किसी पुरुष का कठोर स्वर था ।

“मुझ बेकस की लाज न लो...” युवती रो रही थी ।

इसके बाद जोरों से एक तमाचे की आवाज, पलंग पर जोरों से गिर जाने का घमाका और युवती की तीव्र चीख सुनाई पड़ी ।

लालिमा ने दौड़कर दिनेश को जगाया ।

दिनेश जाग पड़ा । पूछा—“क्या है !”

“मुझे डर लग रहा है...” लालिमा ने डरी हुई आवाज में कहा ।

“आप मेरे पास पलंग पर बैठें...घबराये नहीं...” दिनेश ने उसे सान्त्वना दी ।

और तब दोनों रात भर एकही पलंग पर जागते हुए बैठे रहे ।

दिनेश का कलुषित हृदय न जाने क्यों लालिमा की दयनीय दशा देखकर पसीज उठा था । कलुषता दूर भाग गई थी ।

और लालिमा कृतज्ञता के भार से दबी जा रही थी, दिनेश का व्यवहार देखकर !

दूसरे दिन प्रातःकाल दिनेश लालिमा को अपने यहाँ ले आया ।

मधुकर पूना क्या चला गया, जैसे कला की सारी सुख-शान्ति उसके साथ चली गई। सूना-सूना-सा लगने लगा उसे।

आफिस में निजीव पुत्तलिका की तरह काम करती वह, और शाम को बँगले पर आकर पड़ रहती। घूमना, सिनेमा जाना, हँसकर बोलना सब कुछ छोड़ दिया उसने।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल कला की अन्तर्व्यथा से अनभिज्ञ नहीं थे। वे सतत् प्रयत्न कर रहे थे कि कला की उदासीनता दूर हो जाय, परन्तु अमफल रहे।

दिनेश ने भी कला के प्रति कई बार महान् सद्बोधन दिखाई थी, और कला ने कई शब्द कहकर उसका स्वागत किया था।

फिर भी, कला के इस व्यवहार से दिनेश तनिक भी असन्तुष्ट न हुआ था।

एक दिन कला को आफिस में अकेला देखकर दिनेश उसके पास आया और विनती के शब्दों में उसने कहा—“एक बात पूछूँ मिस कला !...”

“पूछो...” अन्यमनस्क हो कला बोली थी।

“आपकी दशा दिन पर दिन चिन्ताजनक होती जा रही है—” कहा था दिनेश ने—“मुझे अत्यन्त खेद है कि आपके दुःख का कारण मैं बना...आप जानती हैं मिस कला ! कि इन्सान के दिल में सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। उस दिन मधुकर का बर्ताव मेरी सहनशक्ति की सीमा का अतिक्रमण कर गया, और इसी कारण मुझे सेठजी के पास जाना पड़ा।...आज मुझे अपने उस कार्य के लिए हार्दिक पश्चात्ताप है। मैं आप से माफी चाहता हूँ।”

“बन्यवाद !...”

कला ने कहा था।

और दिनेश चुपचाप सर झुकाकर चला गया था ।

उसकी बातों से कला को महान् आश्चर्य हुआ था ।

कला, दिनेश के भीतर बसे हुए जहर को देखकर भी नहीं देख सकती थी, इसीलिये उसकी बातें सुनकर, क्षण भर के लिए उसका हृदय दिनेश के प्रति सदय हो उठा था ।

उसके प्रायः एक सप्ताह बाद—

एक दिन !

बब की कला अपने आफिस में बैठी हुई मधुकर के विषय में सोच रही थी, तो प्यून ने एक पत्र लाकर उसके सामने रख दिया ।

पत्र मधुकर का था । बहुत लम्बा पत्र था । यों लिखा था—
मेरी कला !

तुम मुझसे अप्रसन्न होगी कि दो महीने बाद आज तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ । मुझे आशा है कि तुम मुझे मेरे इस आलस्य के लिए अवश्य क्षमा कर दोगी ।

तुमसे बिल्कुल बब मैं पूना आया, तो दिल ही न लगता था । यह तो कहो कि प्राइवेट सेक्रेटरी मिस आइडा रिबेला ने मुझे समझाला, अन्यथा मैं तो बीमार पड़ जाता ।

कोई स्थान रहने के लिए न मिल सकने के कारण मुझे विवश होकर आइडा के साथ रहना पड़ा । रिबेला बड़े अच्छे स्वभाववाली युवती निकली । उसने मेरी भरसक सेवा को और मेरी प्रसन्नता के लिए बहुत कुछ किया ।

महीनों व्यतीत हो गये । मेरा जी, न जाने क्यों तुम्हें देखने के लिए व्यग्र रहने लगा । परन्तु सहारा ही क्या था !

इसी बीच मुझे एक दिन बुढ़िया दादी की याद आई, जिसके ममत्व की चर्चा मैं तुमसे कई बार कर चुका हूँ ।

बम्बई आते समय मैं दादी से बराबर पत्र लिखते रहने की प्रतिज्ञा

कर आया था, परन्तु व्यस्त रहने के कारण मैं उसकी सुघ एकदम भूल बैठा था ।

दादी की याद आते ही मुझे अपने ऊपर बहुत क्रोध आया । जो बुढ़िया दादी मेरे लिए बहुत कुछ करने को प्रस्तुत रहती थी, उसी के साथ मैंने विश्वासघात किया ।

मेरा हृदय ग्लानि से भर उठा । दादी को एक बार देखने की लालसा तीव्र रूप से जागृत हो उठी ।

इधर मेरा पूना में मन भी नहीं लग रहा था, अतः एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर जाने की सोची ।

छुट्टी तो मिल गई, मगर रिबेला मुझे छोड़ती ही न थी । उसकी आँखों में आँसू देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ । सोचने लगा मैं कि इस गौरी युवती को मुझसे इतनी ममता क्यों हैं, इतना प्यार क्यों है ?

खैर ! किसी प्रकार छुट्टी लेकर कानपुर चल पड़ा । रेलगाड़ी पर सोचता जा रहा था कि मुझे देखकर बुढ़िया दादी कितना खुश होगी !

वह मेरी बलैया लेगी, मेरा मस्तक चूमेगी और फिर इतने दिन तक लापता रहने के कारण डाँटेगी, फटकारेगी ।

जब मैं इसके से अपने दरवाजे पर उतरा, तो देखा, मेरे कमरे में आज भी मेरा छोटा-सा ताला बन्द है ।

दादी का दरवाजा खुला था । दादी अन्दर थी और भीतर से किसी बालक के रोने की आवाज भी सुनाई पड़ रही थी ।

दादी कह रही थी—“चुप रे चुप !...छोकरे ! रोता क्यों है !.... चार महीने का बच्चा और रोता ऐसा है कि सारा घर सर पर उठा लेता है...चुप रह ! तैरी माँ तैरी ममता त्यागकर चली गई तो क्या—मैं तो हूँ !...अच्छा हुआ, वह निगोड़ी यहाँ से भाग गई । भगवान् ने मेरा बुढ़ापा काटने के लिए एक बच्चा तो भेज दिया । चुप रह ! तू बड़ा होगा, तो मैं तुझे पढ़ाऊँगी, वकील बनाऊँगी, तब तू बहू लायेगा और बहू मेरी नाक में दम करेगी...”

“दादी !...”

मैंने पुकारा ।

और दादी हड़बड़ाती हुई बाहर दौड़ी आई ।

मैंने देखा, दादी के गोद में चार-पाँच महीने का एक बच्चा था, रोता हुआ ।

“मधू !...मेरा मधू !...”

मुझे देखकर दादी इतनी प्रसन्न हुई कि हर्ष से उसकी आँखों में आँसू आ गये ।

मैंने आगे बढ़कर उनके पैर छुए ।

“आ गया तू निर्मोही ?”—दादी ने कहा—“भला खोज-खबर तो ली इस बुढ़िया की । मैं तो सोच रही थी अब तू मेरी जिन्दगी में लौटकर न आयेगा...”

“मैं तो आ गया दादी !....”

“हाँ रे हाँ !...आया तो है, सो मैं भी देख रही हूँ !”—दादी कहने लगी—“अब तो अँगरेजी बाबू बन गया है । कोट-पतलून से तो तू पहचान में ही नहीं आता मधू !...”

“यह बच्चा किसका है दादी ?”—पूछा मैंने ।

“सब कुछ दरवाजे पर ही पूछ लेगा या भीतर भी पैर रखेगा ? अभी तो आया है, भीतर चलके पाँव पखार, पानी पो...तो सब बताऊँगी...”

मैं भीतर आया । दादी ने हलुआ बनाकर मुझे खिलाया । फिर पास आकर बैठ गई ।

“अब तू बहुत बदल गया है !”—दादी बोली—“बम्बई रहता था, न !...कभी चिट्ठी भी तो नहीं लिखी । सोचता था कि चिट्ठी लिखेगा तो बुढ़िया पता जान जायगी और दौड़ी आयेगी तुम्हें देखने...”

“यह बात नहीं थी दादी !...” मैंने कहा ।

“देख यह बच्चा तुझे पसन्द है ?”—

“हाँ दादी ! बहुत सुन्दर है बच्चा !” मैंने हाथ बढ़ाकर उस गोरे-गोरे शिशु को गोद में ले लिया ।

मेरी गोद में वह नन्हा-सा खिलौना खेलने लगा । उसे देखकर न जाने क्यों हृदय के किसी कोने में एक अव्यक्त वेदना उठ खड़ी हुई ।

“यह बच्चा किसका है दादी !” पूछ बैठा मैं, उत्सुकतावश ।

“बड़ी लम्बी कहानी है रे मधू !...दादी बोली—“तू सुनना चाहता है, तो सुन ले...”

दादी ने मुझे एक लम्बी कहानी सुनाई । उसका सारांश इस प्रकार है ।

एक शाम, जब कि सूर्य की सुनहली किरणें पश्चिमाकाश पर विलीन हो चुकी थीं, तो दादी किसी काम से अपने दरवाजे के बाहर निकलीं । उन्होंने देखा कि उस सीढ़ी पर, जो मेरे कमरे के सामने थी, कोई विचित्र युवती अस्त-व्यस्त-सी पड़ी है । दादी ने उससे पूछा, तो उसने बताया कि वह एक अभागिन दुखिया है । देखने में वह भले घर की लग रही थी ।

दादी को प्रारम्भ ही से दुखियों के प्रति स्नेह-ममता है । उन्होंने उस युवती को अपने यहाँ रख लिया ।

युवती गर्भवती थी । एक महीने बाद उसके गर्भ से उसी शिशु का जन्म हुआ ।

लगभग दो महीने तक वह युवती दादी के पास रही । उसके बाद एक दिन न जाने कहाँ चली गई, अभागे शिशु को दादी के पास छोड़कर ।

दादी ने भी सोचा कि अच्छा हुआ—एक लड़का उनके मनोरंजन के लिये उन्हें मिल गया ।

“लड़का बहुत अभागा है दादी !”—मैंने कहा ।

“बहुत शैतान है यह मधू !”...दादी बोली—“जब से इसकी माँ गई, बराबर रोता ही रहता है....”

“एक बात कहूँ दादी ।...”

“कहता क्यों नहीं...”

“इतनी ही देर में इस बच्चे के प्रति प्रगाढ़ ममता उमड़ आई है, मेरे हृदय में...”

“बच्चा बहुत सुन्दर है न ! इसलिये...” — दादी ने कहा ।

“मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा दादी !” — मैं बोला — “वहाँ इसके लिये एक घाय रख दूँगा । वही इसका लालन-पालन करेगी...”

“तू था, सो चला ही गया, अब इस लड़के को भी ले जाना चाहता है !...”

दादी ने झिड़कते हुए कहा ।

“तुम इसका ठीक से लालन-पालन न कर सकोगी दादी !...मेरे साथ रहेगा, तो आदमी बन जायगा...”

“अच्छा भाई !—” दादी मेरे दृष्ट से ऊबकर बोलो—“जैसा मन आवे वैसा करना, मैं नहीं रोकूँगी...”

आज पाँच दिन से कानपुर में हूँ । वह बच्चा मुझसे बहुत हिलमिल गया है । दादी ने उसे साथ ले जाने की अनुमति भी दे दी है ।

मैं परसों यहाँ से पूना को प्रस्थान करूँगा । बच्चे को भी साथ ले जाऊँगा ।

अब तुम्हें देखने के लिए तबियत बेचैन है । अपने हृदय को मैं भूला नहीं हूँ, कभी भूल भी नहीं सकता ।

तुम अपने पिताजी से कहकर मेरा तबादला बम्बई को करा दो । यही मेरी आकांक्षा है । तुम्हारे साथ रहने से मुझे बहुत सुख रहता है और तुम इस नये बच्चे को देखकर बहुत प्रसन्न होगी, ऐसी मुझे आशा है ।

व्यर्थ की बातें लिख-लिखकर इतना कागज खराब कर डाला । परन्तु यहाँ कानपुर में मुझे और कौन-सा काम ही है ।

तुम्हारा ही—

मधुकर ।

कला ने पत्र को अपनी जाकेट की जेब में रख लिया और वह

मधुकर के तबादले के लिए अपने पिताजी से परामर्श करने उनके आफिस रुम में जाना ही चाहती थी कि चपरासी आ पहुँचा ।

“दिनेश बाबू एक मिस साहिब के साथ आये हैं...” चपरासी बोला—“आप से मिलना चाहते हैं...”

“भेजो उन्हें...”—कला ने कहा ।

चपरासी गया, तो दूसरे क्षण दिनेश ने लालिमा के साथ वहाँ प्रवेश किया ।

कला ने लालिमा की ओर देखा और लालिमा ने कला की ओर ।

एक क्षण तक वे दोनों सौन्दर्य प्रतिमायें एक दूसरे की ओर देखती हुई आँखों का भाव पढ़ती रहीं—

फिर हाथ उठाकर लालिमा ने कला को अभिवादन किया ।

कला ने उसे बैठने का संकेत किया ।

लालिमा आज अँगरेजी ढंग की पोशाक पहनी हुई थी ।

“लालिमा कीजियेगा”—दिनेश कला से बोला—“मैं आपको कुछ कष्ट देने आया हूँ । आशा है आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगी...”

“कहिये !”...कला ने कहा ।

“ये हैं मिस लालिमा—मेरी दोस्त !...अगर आप कृपा कर इन्हें कोई काम दे सकें, तो मैं चिर-कृतज्ञ रहूँगा, साथ ही मिस लालिमा भी...”

दिनेश ने लालिमा की ओर देखा । लालिमा के कपोलों पर लज्जा नृत्य कर रही थी ।

“आप लोग मेरे साथ आइये—”

उठती हुई कला बोली और अपने पिता के आफिस रुम की ओर चल पड़ी ।

दिनेश और लालिमा भी उसके पीछे-पीछे चले ।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल अपने आफिस में, कुर्सी पर बैठे हुए, पाइप का कश खींच रहे थे ।

कला उनके पासवाली खाली कुर्सी पर जाकर बैठ गई ।

दिनेश और लालिमा खड़े रहे ।

“क्या है कला!”...पूछा सेठजी ने ।

“ये, बैंक के स्टाफ में भरती होना चाहती हैं, पिताजी !”....कला ने लालिमा की ओर इशारा कर कहा ।

रायसाहब सेठ बिहारी लाल ने चुभती दृष्टि से लालिमा की ओर देखा ।

“आपका नाम !...”

“लालिमा !”—धीरे से कहा उसने ।

“कहाँ तक पढ़ी हैं आप !...”

“इन्ट्रेंस तक...”

सेठजी कुछ सोचने लगे । फिर कला से बोले—“कला ! इनका अप्वाइण्टमेण्ट दिनेश के डिपार्टमेंट में कर दो...”

“बहुत अच्छा !....”

कला ने एक कागज पर कुछ लिखकर लालिमा को दे दिया और बोली—“इसे लेकर आप करेण्ट अकाउण्ट डिपार्टमेण्ट के हेड क्लर्क के पास जाइये । वह आपको आवश्यक कार्य की सूचना देगा....”

दिनेश और लालिमा चले गये ।

कला चुपचाप बैठी रही ।

सेठजी ने एक बार कला की ओर देखा, पुनः सर, नीचा कर लिया । कुछ सोचने लगे वे !

थोड़ी देर बाद उन्होंने अपना सर उठाया । पूछा—“कुछ कहना चाहती हो क्या कला !...”

“हाँ पिताजी !....”

जमीन पर नजर गड़ाये कला ने कहा ।

“क्या !...”

“आप नाराज तो न होंगे....”

“नहीं !...तुम अपने मन की बात मुझसे कहो...” सेठजी के स्वर में वात्सल्य भरा था ।

“मैं यही कहना चाहती हूँ कि मधुकर का अपराध इतना बड़ा था कि उन्हें अब बम्बई बुजाया ही नहीं जा सकता !” कला रुद्ध कंठ से बोली ।

“कला !...”

“मधुकर ने अपराध भले ही किया हो, मगर मैंने क्या अपराध किया था पिताजी !...”

“.....”

चुप हो रहे सेठजी । वे जानते थे कि अपराध किया था मधुकर ने, परन्तु सजा भुगत रही है कला—उन्हें मालूम था कि बिना मधुकर के ही, कला आजकल उदास रहती है ।

“क्या उनका तबादला फिर से यहाँ नहीं हो सकता !”—

“हो जायगा—अगले सप्ताह !...”

सेठजीने दूसरी ओर मुख कर लिया । आँखें उमड़ आई थीं शायद ।



लालिमा ने बैंक का काम बहुत मनोयोगपूर्वक करना प्रारम्भ किया और वह कुछ ही दिनों में अपनी नम्रता, अपनी व्यवहारिकता, अपनी कार्य-कुशलता से, बैंक के स्टाफ भर में प्रसिद्ध हो गई ।

दिनेश और लालिमा दोनों पास-पास बैठते थे । दिनेश तो दिन भर में कई बार इधर-उधर घूमने जाता, काम की चिन्ता छोड़कर—परन्तु लालिमा सदैव अपने कार्य में रत रहती थी और अपनी कुर्सी छोड़कर तभी

उठती थी, जब की किसी पेपर पर मैनेजिंग प्रोप्राइटर, मैनेजिंग डाइरेक्टर आदि के हस्ताक्षर कराने होते थे ।

लालिमा दिनेश के डेरे पर ही रहती थी । दिनेश ने उसे अलग से दो कमरे दे रखे थे । खाना दोनों साथ-साथ खाते थे ।

लालिमा दिनेश को बहुत मानती थी, क्योंकि वही उसका सहायक और हितू था ।

वह दिनेश के कलुषित अन्तःकरण से सर्वथा अनभिज्ञ थी ।

और दिनेश के हृदय में आजकल विचारों की अजीब उथल-पुथल मची हुई थी । उसका काला दिल लालिमा की सुन्दरता के लिए तरस रहा था । चाहता था वह यह, कि उस सुन्दरी युवती को अपना बनाकर अपने दिन सुनहले और रातें रंगीन कर ले ।

परन्तु अपनी कलुषित भावना लिए हुये जब-जब वह लालिमा के सामने आता, तो जैसे उसकी जवान पर ताला लग जाता—

जैसे उसकी वाक शक्ति ही नष्ट हो जाती—

जैसे उसके दिल को कुरेद-कुरेद कर कोई उसकी कालिख निकाल देता ।

जैसे लालिमा के चेहरे पर के सरल भाव, उसे अपनी वासना भूल जाने को बाध्य करतै ।

और वह बिना कुछ कहे हुए ही लौट जाता ।

अपने दुर्भावना-भरे हृदय की इस कमजोरी पर दिनेश अत्यन्त लुब्ध था—कई बार क्रोध में आकर उसने अपने मुख पर तमाचे भी मारे थे—

परन्तु वह अपने को सर्वथा असमर्थ पाता था ।

लालिमा के सामने कोई घृणित प्रस्ताव करने का उसमें साहस ही नहीं होता था, क्योंकि उसकी मुखाकृति पर सदैव एक तैज-सा प्रतिभासित होता था, जो अनायास ही वशीभूत कर लेता था ।

दिनेश और लालिमा सदैव साथ रहते—घूमने जाते, सिनेमा

देखते, चाय पीते, बातें करते, और भिन्न-भिन्न विषयों पर वादाविवाद होता—

लालिमा भी प्रसन्न थी—शुरू-शुरू में रहनेवालों उसके मुखपर की वह उदासी अब नहीं रह गई थी ।

दिनेश के रूप में उसे एक अनोखा सहायक मिल गया था, जो उसके लिये सब कुछ करने को तैयार हो सकता था ।

इसीलिए आफिस में भी, लालिमा से किसी को बोलने की हिम्मत न पड़ती थी ।

एक दिन किसी क्लर्क ने उसे कोई बात कह दी, तो उसने दिनेश से शिकायत कर दी थी, और दिनेश ने उसे वह डाँट बताई कि वह सन्न हो गया ।

लालिमा अपूर्व सुन्दरी थी । उसके अंग-अंग सुडौल और मादक थे । आँख की काली पुतलियों में शराब का सागर लहरा रहा था—पुष्ट वक्षस्थल किसी के वियोग में व्याकुल से लगते थे—आतुर अधर गुलाब की लालिमा छिपाकर चुपचाप बैठे थे ।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों दिनेश की वासना बढ़ती गई और उसका साहस कमजोर पड़ता गया ।

शराब मनुष्य क्यों पीता है ?

अपने हृदय की सद्भावना को दबाकर, दुर्भावना उकसाने के लिए ।

तो उस दिनेश ने भी वही किया ।

अपने हृदय की कमजोरियों को दूर करने के लिये उसने एक 'बार' में जाकर खूब शराब पी ।

लड़खड़ाता हुआ जब वह घर पहुँचा, तो रात के दस बज गये थे । नौकर चाकर सब अपने-अपने घर चले गये थे । घर में लालिमा अकेली थी ।

दिनेश ने दरवाजा खटखटाया, तो लालिमा ने झपटकर दरवाजा खोला और दिनेश डगमगाता उसकी ओर बढ़ा ।

“प्रियतमे ।” वह बड़बड़ाया ।

सहमकर लालिमा पीछे हट गई ।

समझ गई वह कि दिनेश ने शराब पी है ।

“होश मे आइये !...” घीरे से कहा उसने ।

“होश में हूँ...होश में हूँ तो !...” घरघराती आवाज में बोला दिनेश—“इधर आओ लालिमा ! मेरी तितली !...” भय से सिहर उठी लालिमा, मगर अपने को संयत किया उसने ।

आगे बढ़ी वह, खुला दरवाजा बन्द करने के लिये ।

दरवाजा बन्द करके ज्योंही वह पीछे घूमी कि दिनेश ने उसे पकड़ लिया । लालिमा के सुपुष्ट कोमल अङ्ग थोड़ी देर के लिए दिनेश के बन्धन में आ गये ।

लालिमा ने जोर लगा करके किसी तरह अपने को छुड़ाया ।

बोली—“दिनेश बाबू ! आप तो ऐसे नहीं थे...आपने आज शराब क्यों पी !...”

“तुमने मुझे पीने पर मजबूर किया...तुम्हारी....तुम्हारी सुन्दरता ने मुझे-मुझे पीने पर...पीने पर...”

लड़खड़ा कर गिर पड़ा दिनेश ।

नशा तीव्र था ।

लालिमा का डर कुछ कम हुआ, यह देखकर कि दिनेश को इतना नशा है कि उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा है और वह उसकी कुछ भी हानि करने में असमर्थ है ।

वह आगे बढ़ी और दिनेश का हाथ पकड़कर उठाया । दिनेश झूमता हुआ उठा, परन्तु फिर लड़खड़ाकर लालिमा की गोद में गिर पड़ा । लालिमा ने उसे अपनी बांहों में कसकर दबा लिया, वरना वह जमीन पर गिर जाता और सर से रक्त की धार बह निकलती ।

लालिमा ने मदहोश दिनेश को चारपाई पर लाकर लिटा दिया और पास ही आराम कुर्सी पर बैठी रही, रात भर, यह सोचकर कि

दिनेश को नशा तीव्र है—कहीं नशे की भोंक में, ऐसा-वैसा कोई काम न कर बैठे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब दिनेश की आँखें खुली, तो उसका सर भारी था और आँखें बोझ से दबी जा रही थीं ।

उसने देखा—आराम कुर्सी पर लालिमा अस्त-व्यस्त पड़ी है । नींद आ गई है ।

उफ ! यह बेचारी रात भर उसकी रखवाली करती रही ।

दिनेश ने धीरे से लालिमा को जगाया । वह हड़बड़ाकर उठ बैठी—देखा तो, दिनेश सामने खड़ा था ।

बोला—“आपको बहुत कष्ट दिया मैंने...मैं बहुत लजित हूँ...”

“आपकी तबीयत कैसी है...” लालिमा ने पूछा ।

“मुझे शरमिन्दा न करें आप !...नशे के भोंक में अगर मैंने कोई गुस्ताखी की हो तो क्षमा चाहता हूँ...मैं कभी पीता नहीं था, वह तो कल एक मित्र ने हठ करके पिला दिया...”

“अब आप कभी न पियें...”—लालिमा बोली—“सुनती हूँ कि यह चीज जवान को, दिल को, शरीर के रग-रग को अवश कर देती है...”

“मैं कभी न पियूँगा...”



मधुकर आज कल छुट्टी पर था और पूना में ब्रांच मैनेजर का काम आइडा रिबेला सम्हाल रही थीं ।

परन्तु मधुकर के चले जाने से उसे सूना-सूना सा लग रहा था । वह अन्यमनस्क भाव से बैंक का सारा कार्य देख रही थी ।

ब्रांच का हेड क्लर्क, रिबेला के टेम्पोररी प्राइवेट सेक्रेटरी का काम कर रहा था ।

रिबेला उदास थी, क्योंकि मधुकर को गये लगभग १० दिन हो रहे थे और उसने एक पत्र भी न लिखा था ।

“मैडम !...हेड आफिस से यह हुक्मनामा आया है !”—सेक्रेटरी ने एक लम्बा सा लिफाफा खोला, तो उसे पढ़ते ही मानों आसमान से गिरी ।

वह हुक्मनामा था । मधुकर का तबादला पूना ब्रांच से बम्बई हेड आफिस के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हो गया था और मिस्टर टामसन पूना ब्रांच मैनेजर होकर आ रहे थे ।

रिबेला के आँखों के सामने अँघेरा छा गया । इधर कुछ ही दिनों से उसके हृदय पर मधुकर की सलोनी आकृति ने उथल-पुथल मचा दी थी ।

और वह न जाने किस संसार में एक सुखद नीड़ बनाने का स्वप्न देख रही थी ।

परन्तु अब उसका स्वप्न, केवल स्वप्न रह गया था । अब उसके पास बूढ़े मिस्टर टामसन आ रहे थे ।

कहाँ सुन्दर, जवान, मनमोहक मधुकर !

और कहाँ बूढ़े गम्भीर मिस्टर टामसन !

रिबेला बड़ी देर तक सर नीचा किये हुए मेज के पास बैठी रही । उसे ध्यान ही न रहा कि उसका सेक्रेटरी उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में अब भी खड़ा है ।

“आप क्या सोच रही हैं मैडम !—” सेक्रेटरी ने पूछा ।

“ओह !...” रिबेला की तन्द्रा भंग हो गई—“कुछ नहीं...कुछ नहीं...तुम इस आर्डर को ले जाकर मिस्टर मधुकर की इनकमिंग रेस्पा-येंस फाइल में लगा दो...मिस्टर मधुकर भी शायद आज शाम तक आ जाँय । आज उनकी छुट्टी एक्सपायर हो रही है...”

सेक्रेटरी चला गया ।

फिर उस दिन उदासी के कारण रिबेला कोई काम न कर सकी । केवल कुर्सी पर बैठी हुई सिगरेट पर सिगरेट फूँकती रही ।

पाँच बजे वह चिन्ता निमग्न डेरे पर लौटी, तो उसने देखा कि मधुकर कानपुर से लौट आया है और गोद में एक नवजात शिशु लिए हुए बाराण्डे में कुर्सी पर बैठा है ।

रिबेला सोचने लगी—यह बच्चा किसका है ? क्या मधुकर का ? परन्तु उसने तो एक दिन कहा था कि उसकी शादी अभी तक नहीं हुई है ।

“तुम आ गये मिस्टर मधुकर !....”

पास आकर रिबेला ने चेहरे पर बनाबटी मुस्कान लाकर पूछा ।

परन्तु उसका हृदय जोरों से रो उठना चाहता था ।

“हाँ ! अभी दोपहर को आया हूँ—” मधुकर बोला—“तुम तो अन्धरी रही न !...”

“अब खैरियत पूछ रहे हो ?—” रिबेला पास की कुर्सी पर बैठती हुई बोली—“घर से तो एक खत भी न लिखा—”

“दस दिन बाद ही तो आया हूँ....खत लिखने की क्या आवश्यकता थी—” हँसते हुए मधुकर ने कहा ।

“हाँ ! तुम्हें इससे क्या कोई मरे या जिये...”

उदासी भरे स्वर में बोली रिबेला ।

“आज तुम इतनी उदास क्यों हो रिबेला ?”—

मधुर स्वर में पूछा मधुकर ने ।

“होगी कोई वजह—क्या करोगे जानकर ?”—रिबेला बोली—

“यह तो बताओ—यह बच्चा किसका है !....”

“बच्चा !...यह ? बच्चा !...”

“हाँ !...”

“मेरा है यह !....” मधुकर ने कहा ।

“तुम्हारा !...” चौंक पड़ी रिबेला !

“हाँ !...” बोला मधुकर ।

“उफ़ !...” रिबेला ने अपना सर पकड़ लिया ।

वह कुर्सी से नीचे गिरते-गिरते बची ।

“क्या हुआ रिबेला !...”

“कुछ नहीं...” उठ खड़ी हुई रिबेला—“बालिम ! तुमने यह पहले क्यों नहीं बताया !...सितमगर ! तुमने मुझसे दगा क्यों की !...”

दौड़ती हुई रिबेला अपने कमरे में चली गई और चारपाई पर गिर कर फूट-फूट कर रोने लगी ।

पीछे-पीछे मधुकर भी आया ।

रिबेला का कन्धा पकड़कर उसने उठाया ।

“रिबेला !”

“जाओ तुम !...” रोते-रोते बोली रिबेला—“सब कुछ लूटकर अब इन आँसुओं को न लूटो...”

“रिबेला !...” मधुकर बोला—“तुम व्यर्थ ही रो रही हो । जब तुम जानती हो कि मैं अबतक अविवाहित हूँ, तो तुमने यह कैसे विश्वास कर लिया कि यह मेरा बच्चा है !...”

रिबेला ने सर उठाया

“तो क्या यह तुम्हारा बच्चा नहीं है !....” पूछा उसने ।

“नहीं...” मधुकर ने कहा—“यह तो दादी को मिल गया था । इसे मैं पालने के लिए यहाँ ले आया हूँ । थोड़ी देर हुई इसके लिए एक धाय रखी है ।”

रिबेला का चेहरा गुलाब की तरह खिल उठा ।

रोती हुई आँखें और हँसते हुए गाल रिबेला की सुन्दरता पर छा गये ।

मुस्कुराते हुए कपोलों का आलिंगन कर, दुलकती हुई आँसु की बूँदे भी मुस्कुरा उठीं ।

“छलिया !...तुमने मुझसे छल क्यों किया !...”

मधुकर का हाथ पकड़ते हुए प्रेमपूर्वक रिबेला बोली ।

“तुमने तो सारी बातें सुनी ही नहीं...” मधुकर ने कहा ।

“अब क्या होगा तुम्हारी बातें सुनकर मधुकर !....”

ठंडी साँस ली रिबेला ने ।

“क्यों....”

“अब तुम जल्द ही यहाँ से जा रहे हो !”—रिबेला बोली ।

“कहाँ ?...”

“हेड आफिस !...”

“क्या कहती हो तुम ?”—

“अभी आज ही आर्डर आया है...” कहती हुई रिबेला दुखी हो पड़ी ।

मधुकर समझ गया कि कला ने अपने पिता से कह-सुनकर उसका तबादला कराया है, क्योंकि उसने कला को पत्र लिखकर इसके लिए प्रार्थना की थी ।

वह खुशी के मारे फूला न समाया ।

“बड़े खुश हो रहे हो मधुकर ? बम्बई जाने की बात सोचकर...”

“खुशी की तो बात ही है !”—मधुकर ने कहा—“वहाँ जाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी...”

“किस बात की प्रसन्नता ?....”

“वहाँ कला का साथ रहेगा और...”

“चुप रहो !...” बिलाख पड़ी रिबेला—“तुम निर्मोही हो...”

“कैसी बड़की-बड़की बातें कर रही हो रिबेला तुम...”

“ठीक कह रही हूँ !”....रिबेला बोली—“सच बताओ, तुमने अब तक कितनी लड़कियों को रलाया है !....”

“मैंने ?”—आश्चर्य-चकित हो उठा मधुकर ।

“हाँ ! तुमने !....तुम्हारी भोली सूरत ने—तुम्हारी जवानी के जहरीले सॉप ने !...”

“.....” चुप रहा मधुकर ।

“तुम निर्मोही हो—निर्मोही !...”

रो पड़ी रिबेला ।

निर्मोही !

मधुकर निर्मोही है ।

सच है यह ! जरूर सच है !

उसने निर्मोही बनकर कंचन को नष्ट किया—और कदाचित्त आज वह बेचारी स्वर्ग में बैठी हुई उसके नाम की माला जप रही होगी—

कदाचित्त उसने प्रेम की आग से छुटकारा पाने के लिए मौत की आग का आलिङ्गन कर लिया ।

आत्म-हत्या !

बेचैनी से छुटपटा उठा मधुकर !

उफ़ वह निर्मोही है, विश्वासघाती है, छलिया है !

नहीं ! वह कुछ भी नहीं है—

उसने किसी के साथ मोह नहीं तोड़ा—

किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया ।

किसी के साथ छल नहीं रचा ।

कंचन ने शीघ्रता करके अपना सर्वनाश कर लिया और मधुकर को इस संसार में तड़पने के लिये छोड़ गई वह ।

उसने मधुकर की विवशता पर ध्यान न दिया ।

मधुकर की माँ मर गई थी; तो वह कैसे सम्भव था कि वह जन्म भर की माँ की ममता भूलकर प्रेमिका को याद करता ! कैसे सम्भव था वह !

पहले तो मधुकर को विश्वास ही नहीं होता था कि कंचन इतनी

निर्मोही

निष्ठुर हो सकती है कि उसे सिसकता हुआ छोड़कर इ जायगी—

परन्तु जीवन के पत्र से कुछ ऐसा भाव झलकता था विश्वास करना पड़ा ।

जब मधुकर को विश्वास हो गया कि भोली कञ्चन ने शरीर का अन्त कर डाला; तो उसे कम दुःख नहीं हुआ था— वह रोया था—तड़पा था—करुण चीत्कार किया था उसने परन्तु हाथ से कूटा तीर कैसे वापस आ सकता था— शरीर से निकला प्राण कैसे लौट सकता था ! हृदय पर पत्थर रख लिया था मधुकर ने । अन्तराल की अगम बेदना मूक होकर सहन किया था उसने और फिर—

अपना समग्र प्यार कला के चरणों पर रख दिया था ।

कला !

जिसने अगम सहानुभूति हृदय से उसका हाथ पकड़ा था—

तो वह कैसे ठुकरा सकती थी मधुकर को—

परन्तु आज !

मधुकर कला से दूर आ पड़ा है और उसका सम्पर्क इस नादान युवती रिबेला से हुआ है; जो केवल सहानुभूति से सन्तोष न कर, उसका प्रेम; उसकी खवानी पाना चाहती है ।

कैसे हो सकता है यह !

असम्भव !

“रिबेला !”...मधुकर ने बच्चे को चारपाई पर लिटा दिया और रिबेला की ठुड्डी पकड़कर ऊपर उठाया—“तुमने हमको गलत समझा है रिबेला !...”

“बातें न बनाओ मधुकर !...तुमने तो अब मुझे कहीं का न छोड़ा...”

..रिबेला—” मधुकर ने रिबेला को अपने पास खींच-
। तुम्हें प्यार किया है—मैंने तुम्हें चाहा है—मगर उस
।।ह में वासना का पुट न आने दो रिबेला !...”

..”
तुम्हें प्यार किया, परन्तु तुम्हारी जवानी से कभी प्यार
—मैंने तुम्हें चाहा, परन्तु तुम्हारे यौवन की कभी चाहना
..”

तुम जाओ...मुझे अकेली छोड़ दो—” रोते-रोते रिबेला बोली—
“मुझे रोकर जी हल्का करने दो...”

मधुकर बच्चे को उठाकर बाहर चला आया। वह बेचैन हो रहा
था, रिबेला का उद्विग्नता देखकर।

दूसरे दिन—

सूर्योदय हुआ, तो गुलाब हँस पड़े।

रिबेला चाय लेकर मधुकर के पास आई। मधुकर छोटे शिशु अमर
को लिये हुए बैठा था। अमर की धाय भी जमीन पर बैठी थी। सामान
बँधा पड़ा था।

मधुकर ने बम्बई जाने की तैयारी कर ली थी। धाय भी अमर को
लेकर साथ ही जानेवाली थी।

रिबेला और मधुकर ने साथ ही चाय पी। दोनों चुप थे।

टैक्सी करके सब लोग स्टेशन आये। और ‘पूना बम्बई मेल’ पर
आ चढ़े। रिबेला प्लैटफार्म पर आँसू भरी आँखें लिए खड़ी रही।

गाड़ी धीरे-धीरे चली तो मधुकर ने रिबेला का हाथ अपने हाथों में
लेकर चूम लिया।

रिबेला ने भी ऐसा ही किया।

“हम तुम्हारी हमदर्दी कभी भूल न सकेंगे रिबेला !—” मधुकर
ने कहा—“हमारी तुम्हारी भेंट अक्सर होती रहेगी...”

“कौन जाने !—” भीगे स्वर में बोली रिबेना—“हम तुम मिले थे, केवल बिछुड़ने के लिए । मैंने दिल दिया था, सिर्फ तड़पने के लिए ।...”

गाड़ी चल गई । रिबेना रो पड़ी ! कौन समझाये उसके दिल को !



दिनेश कुर्सी पर कुछ सोचता हुआ बैठा था । उसी समय लालिमा हाथ में चाय का ट्रे लिये हुए वहाँ आई ।

“अरे आप ?”...दिनेश बोला—“आपने क्यों कष्ट किया !...”

“इनमें कष्ट की क्या बात है दिनेश बाबू !—”

मधुर स्वर में कहा लालिमा ने ।

“नौकरानी कहाँ गई !—” पूछा दिनेश ने ।

“उसे जरा काम से बाजार भेजा है....” लालिमा ने उत्तर दिया !

“नौकरानी आ जाती तो चाय लाकर देती, आपने क्यों इतनी जल्दी की...आप मेरी मानें, तो मेरे लिये इतना कष्ट न किया करें...”

“मुझे तनिक भी कष्ट नहीं हुआ है दिनेश बाबू !”...लालिमा ने कहा—“आप चाय पीने का कष्ट करें...”

मुस्कुरा उठा दिनेश । बोला—“आप भी बैठे...”

लालिमा बैठ गई ।

दिनेश ने दो प्याली चाय बनाई । एक अपने आगे रख ली और दूसरी लालिमा के आगे सरका दी ।

“आप भी चाय पीजिये मिस लालिमा !...”

“धन्यवाद !...”

लालिमा ने चाय की प्याली उठाकर अपने मधुर अचरों से लगा

ली। गरम चाय, मादक अघरों का चुम्बन लेती हुई पेट में उतर गई।

“यह क्या !....उबाले हुए अण्डे !....”

“जी हाँ !...”...लालिमा ने कहा—“आमलेट जल्दो-जल्दी में नहीं बना सकी। क्षमा करें...”

“कोई बात नहीं”...दिनेश ने कहा—“मुझे उबाले अण्डे बहुत पसन्द हैं...और आपको !...”

“मुझे भी...” धीरे से लालिमा बोली।

फिर थोड़ी देर तक नीरवता ही रही। दोनों चुपचाप चाय पीते ही रहे।

“आज आप आफिस से आये तो कुछ उद्विग्न क्यों थे ?...आफिस में भी आपको बहुत परेशान देखा था मैंने...” लालिमा बोली।

“क्या बताऊँ !....इतने दिन तक तो आराम से बीते, मगर अब मेरे रास्ते का काँटा फिर उभर आया है...”

“बात क्या है ?”—पूछा लालिमा ने।

मेरा, सबसे महान् शत्रु इस बैंक का मैनेजिंग डाइरेक्टर होकर, पुनः आ रहा है...” दिनेश ने उत्तर दिया।

“कौन है वह ? क्या नाम है उसका ?...”

“वह एक भयानक शैतान है—” दिनेश बोला—“नाम उसका मधुकर है....”

“मधुकर !....”

न जाने क्यों चौंक पड़ी लालिमा। उसका सारा बदन सिहर उठा। चाय की प्याली नीचे-नीचे गिरते-गिरते बची।

“मधुकर !...क्या नाम लिया आपने ?”—लालिमा ने पूछा।

“जी हाँ ! आपने ठीक सुना—उसका नाम मधुकर है।”—दिनेश ने कहा “मगर आप व्यग्र क्यों हो उठीं ?”

“कुछ नहीं...कुछ नहीं !...” लालिमा ने दूसरे ही क्षण अपनी

भंगिमा ठीक कर ली—“मैं इसलिये व्यग्र हूँ कि क्या संसार में ऐसे भी आदमी हैं, जो आप जैसे सहृदय व्यक्ति के साथ शत्रुता कर सकते हैं...”

“हैं क्यों नहीं ?”—बोला वह—“इसी मधुकर को देखिये । मेरे खून का प्यासा है....!—”

“मधुकर कहाँ के रहने वाले ?”

“कानपुर का रहने वाला है वह ?...”

“कानपुर का ?...” कुछ सोचने लगी लालिमा ।

“जी हाँ !—” दिनेश बोला—“मेरी उसकी सारी शत्रुता केवल कला के लिए है....”

“कला के लिये है !...सेठ जी की लड़की के लिये....!”

“हाँ !...मधुकर ने अपना जाल उस भोली लड़की पर फेंक दिया है और वह नादान छोकरी भी इसके पीछे पागल हो रही है । मैं उसका सम्बन्धी हूँ, परन्तु वह मेरी परवाह नहीं करती...”

“क्या मधुकर का, सेठ जी की लड़की से सम्बन्ध है ?—”

“केवल सम्बन्ध ही नहीं—” दिनेश दृढ़ स्वर में बोला—“मेरा तो अनुमान है कि वे दोनों जवानी के आवेग में आकर सम्यता की सीमा का अतिक्रमण कर गये हैं....”

“उफ़...”

लालिमा ने चाय की प्याली मेज पर रख दी ।

“क्या हुआ मिस लालिमा !...क्या हुआ आप को ।—”

“कुछ नहीं दिनेश बाबू ! गरम चाय से होंठ जल गये थे...आप कहते चलिये, बकिये मत...”

“एक दिन कला के लिये ही मधुकर से मेरा झगड़ा हो गया और मैंने उसी दिन सेठजी से कहकर उसका तवादला पूना को करा दिया.... मेरी असावधानता से लाभ उठाकर उसने मेरे चेहरे पर दो घूँसे जमा दिया था । अब मालूम होता है कि कला ने सेठजी से कह-सुनकर उसे फिर बुला मेजा है...”

“कब आ रहे हैं मधुकर !” — पूछा लालिमा ने ।

“कल वह आफिस में आकर चार्ज लेगा !” — दिनेश बोला —

“मगर आयेगा तो आज ही....”

दिनेश ने घड़ी की ओर देखा —

“इसी समय साढ़े सात हो रहे हैं !” — बोला वह — “बम्बई-पूना मेल स्टेशन पर आ गई होगी...”

सात बजकर तीस मिनट !

बम्बई-पूना मेल विक्टोरिया टर्मिनस पर खड़ी-खड़ी हाँफ रही थी । अभी-अभी वह आकर खड़ी हुई थी । यात्री उतर रहे थे ।

सेक्रेट क्लबास के एक डब्बे से उतरकर मधुकर ने प्लेटफार्म पर पैर रखा ही था कि कला को देखकर चौंक पड़ा ।

कला ने भी उसे देख लिया और वह हर्ष-विह्वल हो उसकी ओर दौड़ पड़ी ।

एक युग के पश्चात् दोनों ने एक दूसरे को देखा था, अतः दोनों मदहोश से हो रहे ।

भूल गये वे कि वह स्टेशन है और वहाँ अन्य अपरिचित व्यक्ति भी उपस्थित हैं —

“मधुकर !”

कला के भीगे गले से अस्फुट स्वर निकला और वह नन्हीं गुड़िया-सी मधुकर के पैरों पर नत हो गयी ।

“कला !...मेरी कला !...”

मधुकर के आतुर हाथों ने कला के कोमल शरीर को ऊपर उठाया ।

दोनों प्रेमी कुछ देर तक सुघ-बुघ खोये-खोये से रहे ।

और तब कला की दृष्टि, मधुकर के पीछे खड़ी, हाथ में शिशु जिये हुए एक अघेड़ स्त्री पर पड़ी ।

“यही वह बच्चा है कला ! जिसके विषय में मैंने तुमको अपने पत्र में लिखा था....और यह बच्चे की घाय है...” मधुकर ने कहा ।

“ओह ! बड़ा सुन्दर बच्चा है...”

कला ने बच्चे को गोद में ले लिया ।

“तुम्हें पसन्द है यह बच्चा, कला ?”—पूछा मधुकर ने ।

“हाँ हाँ ! यह तो बिल्कुल तुम्हारे जैसा है...” कला ने कहा ।

“मेरा ही बच्चा तो है—तो होगा किससे जैसा !...”

“तुम्हारा बच्चा है यह ?”—कला ने कहा—“बड़े आये हो बच्चे वाले ! बच्चे को दूध पिलाना भी जानते हो, या योंही बच्चे वाले बनते हो !...चलो हटो—बच्चा मेरा है...”

“अच्छा झगड़ा छोड़ो ।”—मधुकर बोला—“आओ हम तुम मेल कर लें...”

“किस शर्त पर ?”

कला ने अपने मंदिर नयनों द्वारा मधुकर की ओर देखते हुए पूछा ।

“बच्चा न केवल तुम्हारा और न हमारा....”

“तब फिर किसका ?”...पूछा कला ने ।

“हम दोनों का !”—मधुकर ने कहा ।

“अच्छा यही सही !”—बोली कला ।

कला ने बच्चा धाय की गोद में दे दिया और तब सब बाहर आये ।

एक टैक्सी की गई और उसने सबको चर्नीरोड पहुँचा दिया, जहाँ मधुकर का पहले वाला डेरा था ।

डेरे पर आकर धाय तो बच्चे की सेवा में लग गई और एक एकांत कमरे में एक पलंग पर बैठकर मधुकर और कला बातें करने लगे ।

दोनों के हृदय में एक दूसरे प्रति शिकवा-शिकायतें थीं—

दोनों एक दूसरे से, इतने दिन की वियोग-बवाला का विनिमय करना चाहते थे—

कला बहुत प्रसन्न थी, यह देखकर कि मधुकर इस बार उससे दिल खोलकर मिला ला—उसके सीने पर अपना दिल रख दिया था ।

और बेचारा मधुकर तो अपना भुत्तावा दे रहा था । कंचन को

खोकर उसे कला से सन्तोष करना था और अपने इस सन्तोष से वह अत्यन्त प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहा था ?

“कला !”

उसने धीरे से कला का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा ।

“मेरे मधू !...”

और कला उसकी गोद में खुदक पड़ी ।

मधुकर ने उसे प्यार से थपथपाया ।

“कैसे रही कला !...”

“तुम कैसे रहे !...”

“तड़पता रहा मैं !...”

“सिसकती रही मैं !....”

कला ने कहा । उसके अघर बेहोश हो गये, मधुकर के होठों का आलिङ्गन कर ।

थोड़ी देर तक वे दोनों अपने आपको भूले रहे ।

मधुकर विभोर था ।

कंचन को खोकर अब कला को भी कैसे खो सकता था ?

कला मदहोश थी ।

अपना हृदय धुलाकर, अब मधुकर को छोड़ कैसे सकती ?

“कला !...मेरी रानी ।—”

मधुकर ने मदहोश आँखों से कला की सलोनी मुखाकृति देखते हुए कहा ।

“मधू !...मेरे प्राण !...”

कला ने अपनी फूल-सी बाहों का बन्धन ढढ़ करते हुए कहा ।

“आज का दिन हमारे लिये कितना सुखमय है कला !...”

“तुम तो इतने मादक कभी नहीं लगते थे मधू”....कला ने कहा—

“पूना जाकर तुम अपने अंग-अंग में मादकता भर लाये हो...”

“मदिरा पीने से ही अंग-अंग में मादकता आती है रानी !... तुम्हारा यौवन मदिरालय है, जिसने मुझे मादकता प्रदान की है...”

“यह मदिरालय अब तुम्हारा है मधू ! और तुम हो इसके अविष्टा—”

कला ने कहा ।

युगों की अगम प्यास लिये दो अधर पुनः आपस में जा टकराये ।

कमरे की निर्जीव दीवालें, जैसे सजीव हो उठीं ।

वातावरण शराबी-सा लड़खड़ा उठा ।



आब मधुकर पुनः मैनेजिङ्ग डायरेक्टर की कुर्सी पर आसीन था । कला भी उपस्थित थी । काम की फिक्र छोड़कर दोनों आपस में बुल-बुलकर बातें कर रहे थे ।

“कल रात को जब मैं देर से बँगले पर पहुँची ।” —कला कहने लगी—“तो पिताजी कलब से वापस आ गये थे...”

“कुछ कहा उन्होंने ?” —

“पूछे मुझसे, तो मैंने कह दिया कि मधुकर के साथ थी...”

“तब क्या बोले ?...”

“मुस्करा कर कहने लगे कि मधुकर तुझे बहुत पसन्द है न !... अब वह हमेशा बम्बई में ही रहेगा । कुछ दिनों बाद ही वह इसी बँगले में आ जायेगा । मैं बूढ़ा हो चला, अब तक का कारबार तुम दोनों को सौंपकर आराम की जिन्दगी बिताना चाहता हूँ... इतना मुनते ही मारे लज्जा के मेरा मुँह लाल-लाल हो उठा...”

“काश तुम्हारी लज्जा पर निछावर होने के लिये मैं वहाँ होता !....” मुस्कुरा कर कहा मधुकर ने ।

“अब निछावर हो जाओ...” तिरछे-तिरछे देखती हुई कला बोली ।

“आवो !...”

“कहाँ !...”

“मेरे पास...” मधुकर ने कहा ।

“क्यों !...” कला ने पूछा ।

“ताकि निछावर हो सकूँ...”

“दूर से निछावर क्यों नहीं होते...”

“नहीं पास से ज्यादा अच्छा होगा...”

कहकर मधुकर ने अपने तृपित अधरों को कला के मादक होठों पर निछावर कर दिया ।

“लो हो गया न निछावर !...”

“चलो दटो !...यह तो चोरी है—” शोखी से कहा कला ने ।

“चोरी !...”

“और नहीं तो क्या !...”

“अच्छा चोरी ही सही !—” मधुकर ने कहा—“मैं तो चाहता हूँ कि हर समय ऐसी चोरी किया करूँ....”

“घबडाओ नहीं...” लजाती हुई कला बोली—“अब वह समय भी आना ही चाहता है...”

“कब आयेगा !—” पूछा मधुकर ने ।

“जब तुम पिताजी से कहकर मुझे माँग लोगे...”

“मुझे तो बहुत संकोच मालूम होता है, उनसे कहते हुए...”

“एक बार साहस करके उनसे यह बात कहो—वे मुझे बहुत प्यार करते हैं । तुम्हारी बात वे अस्वीकार नहीं करेंगे...”

“अच्छा किस दिन कहूँगा...”

“किसी दिन नहीं...आज ही कल मैं कह डालो—मेरी अस्वस्थता पर रहम करो...” कला बोली ।

“मुझे भी कम बेचैनी नहीं है रानी !....”

मधुकर ने कला को समेटकर अपने सीने से दबा लिया ।

“ओह ! छोड़ो मुझे—” कला अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करती हुई बोली—“पिताजी ने मुझे इस स्टेफ की ताली देने के लिए बुलाया था । कहा था उन्होंने कि परमों पहली तारीख है । उस दिन मधुकर हो सबको तनख्वाह बाँटेगा....मुझे जाने दो...”

मधुकर ने उसे छोड़ दिया । कला अपने पिता के आफिस रुम की ओर भाग गई ।

मधुकर फाउन्टेनपेन निकाल कर एक कागज पर कुछ लिखने लगा ।

उसी समय उसके आफिस का दरवाजा खुला और लालिमा ने अन्दर प्रवेश किया । उसका चेहरा न जाने क्यों आवेशमय हो रहा था । पुष्ट छ्वातियों की तोत्र घड़कन, कसे हुए बनावट पर स स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी ।

परन्तु मधुकर लिखने में इतना तल्लीन था कि उसने ध्यान ही न दिया कि उसके कमरे में कौन आया है !

उसी समय किसी की पतली उंगलियों ने मधुकर के सामने कुछ कागज रख दिये—

और मधुकर ने सुरीले स्वर में कहा—“कृपया, हस्ताक्षर कर दीजिये !”

“.....”

चौक पड़ा मधुकर, लालिमा का वह स्वर सुनकर । जैसे किसी ने बिजली भर दी हो उसके रग-रग में ।

उसने सर उठाया, लालिमा को आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखा ।

उसकी आँखों के सामने एक बार अन्वकार छा गया, फिर सैकड़ों

सूर्य का-सा प्रकाश-पुंज उदय हुआ, फिर मस्तिष्क में विद्युत-प्रवाह की सनसनाहट भर गई ।

“कृपया हस्ताक्षर कर दीजिये...”

ऐसा लगता था कि लालिमा बहुत प्रयत्न करके अपने को सम्हाले हुए है ।

“तुम...आप...तुम...!—”

मधुकर ठीक से कुछ न बोल सका ।

लालिमा के सौन्दर्य ने उसपर न जाने क्या जादू कर दिया था ।

“कंचन !...” बड़े प्रयत्न से मधुकर बोला ।

“मेरा नाम लालिमा है—” लालिमा ने कहा—“आप जल्दी से हस्ताक्षर कर दीजिये—मुझे देर हो रही है...”

“तुम्हारा नाम लालिमा !...नहीं-नहीं, मुझे भुला न डालो कंचन !...मैं तो समझता था, तुम....तुम....तुमने...”

“आप कहाँ की बातें कर रहे हैं...”

“तुम कंचन हो, मेरी कंचन !...”

मधुकर ने लालिमा का हाथ पकड़ लिया ।

और लालिमा ने मधुकर का हाथ झटक दिया ।

“मिस्टर मधुकर !”....तीव्र स्वर में वह बोली—“आप मेरा अपमान कर रहे हैं । मैं फिर कहती हूँ कि मेरा नाम लालिमा है...कंचन नहीं...”

“कंचन है तुम्हारा नाम !”—अत्यन्त व्यथा से सर पकड़ लिया मधुकर ने—“वही रूप, चेहरा, वही स्वर जरा भी परिवर्तन नहीं—परिवर्तन है तो केवल वेशभूषा में—फिर भी तुम कंचन नहीं....!”

मधुकर बेचैनी से उठकर कमरे में टहलने लगा ।

आज इस दुनिया में उसने एक असम्भव बात देखी थी—

एक ही सूरत-शक्ल के दो प्राणी—दो जीव !

कंचन और लालिमा—

जैसे एक ही शरीर की दो आत्मायें हों—

अथवा एक ही ढाँचे की दो पुतलियाँ हों ?

परन्तु मधुकर को विश्वास ही नहीं हो रहा था—वह सोच ही नहीं सकता कि विधाता के इस विश्व में एक ही सूरत के दो प्राणी भी हो सकते हैं।

“मुझे तुमने पहले ही से मुरदा बना रखा है कंचन ! अब मुरदे की खाल न खींचो...मुझपर तरस खाओ...”

मधुकर ने लालिमा का हाथ पकड़कर अपने कन्नेजे पर रख दिया।

बोला—“यहाँ की धड़कन देखो—यहाँ की बेचैनी सुनो...तुम चाहे कोई भी हाँ, थोड़ी देर के लिए कंचन बन जाओ—मेरे हृदय की ज्वाला शान्त कर दो...”

इस बार लालिमा ने अपना हाथ नहीं खींचा ! कदाचित्त वह यह सोच रही थी कि कैसे समझाये वह इस प्रेमी पागल को, जो न जाने उसे कंचन समझ बैठे है !

मधुकर की दशा देखकर कोमल हृदया लालिमा का दिल भर आया और उसका नयन कोटरों में दो बूँद अश्रु छलछल्ला उठे ?

लालिमा ने उन्हें तुरन्त पोंछ लिया, जिसे मधुकर ने नहीं देखा।

मधुकर ने लालिमा को चुप देखकर, उसका कोमल हाथ पकड़कर अपने हाँठों से लगा लिया—

और पागलों की तरह उसपर चुम्बनों की बौछार करने लगा।

उफ ! उसने आज तक जिस कंचन को मरी हुई समझा था, वह जीवित है !

जीवित है !

परन्तु अब तो बड़ी निष्ठुर बन गई है।

खैर ! चाहे जैसे हो वह अपनी देवी को प्रसन्न कर ही लेगा।

लालिमा की चुप्पी से मधुकर को विश्वास हो गया था कि यह कंचन टी है।

उसने उन्मत्त की तरह लालिमा को अपने पास खींच लिया ।

“मेरी कंचन !...”

अब उसका व्यवहार लालिमा की सहन सीमा को पार कर गया ।

“अपने को समझालो मिस्टर मधुकर !...” लालिमा बोली—“अब तक तो मैं दिनेश बाबू से आप के विषय में सुन ही चुकी थी—आज प्रत्यक्ष देख लिया...”

हाँफने लगी लालिमा ।

मधुकर सन्न खड़ा रह गया ।

“देख लिया कि आपने कंचन नामक किसी लड़की को बरबाद किया और अब मुझपर कुदृष्टि डाल बैठे । इसके अतिरिक्त मिस कला के साथ भी आप विश्वासघात कर रहे हैं...” लालिमा बोली ।

“उफ़ !...”

सर पकड़कर कुर्सी पर बैठ गया मधुकर और तीव्र साँसें लेने लगा ।

परन्तु मधुकर ने कुछ ध्यान न दिया । वह बेचैन बन कुर्सी पर बैठा रहा ।

उसका मस्तक चकरा रहा था—आँखों के आगे ज्वाला फूट पड़ी थी ।

लालिमा के हृदय में पुनः दया का श्रोत उमड़ आया ।

वह मधुकर की कुर्सी के पास आ खड़ी हुई ।

मधुकर के सर पर अपना फोमल हाथ फेरने लगी ।

बोली—“आपकी तबीयत ठीक नहीं है मधुकर बाबू !... आप अपने घर जाकर आराम करें....मैं देखती हूँ कि आपको ज्वर हो आया है...”

मधुकर कुछ न बोला । उस भोली नारी का चरित्र उसे बहुत गहन लगा ।

उसने लालिमा के कागज को उठाकर उनपर काँपते हाथों से हस्ताक्षर कर दिया ।

“अब आप जा सकती हैं...” मानों मधुकर की मरी आत्मा बोल रही थी ।

लालिमा चली गई । मधुकर ने अपना मस्तक मेज पर दे मारा । सर फूट आया । रक्त भी बह चला । कपड़े भीगने लगे ।

दस मिनट बाद कला हाथ में तालियों का एक छोटा-सा गुच्छा लिए आ पहुँची ।

बोली—“यह लो ! वह सेफ की ताली पिताजी ने दी है । इसे अपने पास रखो । सेफ में कुल ७० हजार रुपये हैं...”

मधुकर ने कला के हाथ से वह ताली लेकर मेज पर रख दी ।

कला ने देखा, मधुकर का हाथ काँप रहा था । उसी समय उसकी दृष्टि मधुकर के सिर से बहते हुए रक्त पर पड़ी ।

“यह क्या हो गया तुम्हें !...” कला बेचैन हो बोली ।

“यों ही चोट लग गई !...”

“चलो पट्टी बाँध दूँ...”

मधुकर ने प्रतिवाद न किया और कला के साथ कमरे के बाहर हो गया दस मिनट बाद मधुकर सर में पट्टी बाँधे हुए लौटा, कला भी साथ थी ।

“ताली तो ठीक से रख दी न !...” पूछा कला ने ।

“यहीं मेज पर तो थी !...” मधुकर ने कहा । परन्तु बहुत खोज करने पर भी ताली न मिली ।

तो मधुकर ने सोचा कि शायद उसने ताली कहीं दूसरी जगह रख दी है, और इस समय परेशानी के कारण उसे भूल गया है । तबोयत ठिकाने होते ही वह ताली खोज लेगा ।

शाम को, जब मधुकर और कला बाहर निकले, तो मधुकर ने सुन्दरी लालिमा को दिनेश का हाथ पकड़े हुए जाते देखा ।

उसका हृदय हाहाकार कर उठा ।

जीवन का दुःखमय जीवन जो कभी हर्ष और उल्लास से पूर्ण था, अब विभिषिकामय हो गया था । काली रात्रि-सा घनघोर अन्धकार छा उठा था चारों ओर, और जीवन अपने उस कालिमापूर्ण जीवन से व्यथित और शोकमग्न था ।

माता को खोकर, उसने पिता की सुखमयी गोद का आश्रय लिया था ।

और एक दिन जब उसके पिता भी उसे छोड़कर चल बसे, तो उसने कंचन जैसी ममतामयी बहिन पाकर सन्तोष की साँस ली थी और अपने अस्त व्यस्त जीवन को सौंप दिया था कंचन को ।

अपने उमड़ते हुए दिल को कला की ठोकरे खाते हुए देखा था उसने—

और तब बहिन का अभूतपूर्व स्नेह पाकर उसने वह प्रबल मानसिक आघात भी चुपचाप सहन कर लिया था—

परन्तु अन्त में एक दिन वह भी आया, जब वह अपनी लाडली बहन को भी खो बैठा—

उसके जीवन का वह अन्तिम आधार भी टूट गया ।

और तब जिस जीवन ने अपने जीवन की सारी सरसता खोकर भी आँसू न बहाये थे, वह अपनी बहन को खोकर रो उठा ।

वह कमरे की निर्जीव दीवारों से अपनी बहन की कण्ठ कहानी पूछता था—

बाग में कोमल पत्तों को अपने आँसुओं से भिगो देता था—

गुलाब के फूलों को अपने पैरों से ठुकरा कर कंचन का पता पूछता था—

परन्तु कंचन को खोजने के उसके सब प्रयत्न बेकार हुए थे ।

जीवन का क्रोध मधुकर पर था, निर्मोही मधुकर पर ।

जिसने, काले बादल-सा कंचन के जीवनाकाश पर मँडराकर, विष की बूँदें बरसायी थीं—

जिसने एक कोमल बालिका की सारी चंचलता छीनकर, उसे शोक सागर में गोते लगाने की बाध्य किया था—

जिसने साँप बनकर कंचन का दिल डँसा था और उसे मरने पर मजबूर कर दिया था ।

जब-जब मधुकर की याद आती उसका हृदय, उसका खून करने के लिए तड़प उठता ।

जोरों से हाथ मलने लगता वह—

उमे ऐसा प्रतीत होता, जैसे उसके कठोर पंजों के बीच छलिया मधुकर का गला आ पड़ा हो और वह दबा-दबाकर उसे निर्जीव बना रहा हो ।

जिस दिन कंचन गई, उसी दिन से जीवन विस्तर पर पड़ा था । उसकी एक टाँग टूट गई थी ।

टूटी हुई टाँग के जुटने में कई महीने लग गये । जीवन ने कारखाना बन्द कर दिया और हर समय हवेली में बैठा हुआ अपनी गीली आँखें पोंछता रहा ।

आज बहुत दिनों के बाद जीवन छड़ी के सहारे, बाग में आया था । टाँग उसकी अच्छी हो चुकी थी, परन्तु बिना छड़ी के सहारे वह नहीं चल सकता था ।

बाग की रविश पर आराम कुर्सी के सहारे लेटा था वह ।

“बाबूजी ! चाय लाऊँ !”...एक नौकर ने आकर कहा ।

“नहीं !—”

सर लटकाये हुए किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न, जीवन ने कहा । नौकर चला गया ।

दूसरा नौकर आया—

“बाबूजी ! नाश्ता कर लीजिये !...”

“नहीं !”...जीवन ने कहा ।

“थोड़ी देर बाद तीसरा नौकर आया—

“सरकार ! नहाने के लिए पानी गर्म हो चुका है...”

“नहीं !...”

“भोजन तैयार है बाबूजी !...”

“नहीं !...”

न जाने कब तक बैठा रहा जीवन, उसी चिन्ता में डूबा हुआ ।

“बाबूजी ! कारखाने के सब मजदूर दरवाजे पर खड़े हैं...आपका दर्शन चाहते हैं...”

“कहते हैं कि आज कई महीनों से कारखाना बन्द है—अब खुलना चाहिये—”

“नहीं !...चले जाओ यहाँ से...”

बिगड़ा जीवन ।

“सरकार ! वे कह रहे कि उनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं....”

“मर जाने दो...मैं भी मर चुका हूँ !”—

जीवन का वह वृद्ध नौकर, जिसने जीवन को अपनी गोद में खिलाया था सर झुकाकर जाने लगा ।

“सुनो रामदास !...”जीवन ने उसे रोका ।

वृद्ध नौकर लौट आया ।

“देखो मैं मर गया हूँ तो क्या, अपने मजदूरों को न मरने दूँगा... मुनीमजी से कहकर सभी को पचीस-पचीस रुपये दिला दो....”

“मगर सरकार ! इस तरह आप कब तक उनको रुपये देंगे !... पहले भी कई बार आप ऐसा कर चुके हैं...”

“तुम जाओ—जैसा मैं कह चुका हूँ, करो...”

नौकर चला गया ।

आधे घण्टे बाद वह पुनः आया । उसके हाथ में पहली डाक से आये हुए कई पत्र थे ।

जीवन ने उदासीन भाव से सब पत्र ले लिये और एक पत्र खोल डाला ।

चौक पड़ा जीवन मधुकर की लिखावट देखकर ।

उसने खुले हुए पत्र को मोड़कर मजबूत उँगलियों के बीच पकड़ लिया । फाड़ना चाहता था वह उस निर्मोही के पत्र को ।

उसे मधुकर से घृणा थी—

उसे मधुकर की लिखावट से घृणा थी ।

पत्र को लिए हुए कुछ देर तक वह न जाने क्या सोचता रहा ।

पुनः पत्र खोल डाला और पढ़ने लगा—

यों लिखा था—

निर्मोही के जीवन !

बहुत साहस कर तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ, क्योंकि अपने पिछले पत्र में तुमने अपनी जो रुष्टता प्रकट की थी, उसने मुझे भयभीत कर दिया था ।

इसी कारण मैं कई बार तुमसे मिलना चाहकर भी, न मिल सका— तुमको पत्र लिखने की आकांक्षा रहते हुए भी पत्र न लिख सका ।

परन्तु आज लिखने बैठा हूँ तुम्हें ! कार्य बहुत आवश्यक था, इसी-लिये इतना साहस कर सका हूँ ।

मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे घृणा करने लगे हो और इसी कारण कदाचित् मेरी बातों पर विश्वास न करो ।

कंचन को तुमने और मैंने, दोनों ने ही मृत समझ लिया था ।

परन्तु वह अबतक जीवित है ।

आज मैं पूने से यहाँ आया हूँ और उसे अपने ऑफिस में देखा हूँ वह मेरे ही बैंक में क्लर्क का काम करती है ।

उसने अपना नाम लालिमा रख लिया है । मैंने उससे बातें करने का प्रयत्न किया, तो उसने मुझे फटकार दिया, जैसे वह मुझे पहचानती ही नहीं ।

वह दिनेश नामक एक पाजी क्लर्क के साथ रह रही है।

मैं बहुत दुखी हूँ कि तुम्हारे और कंचन के कष्ट का कारण बना।

परन्तु मेरी प्रार्थना है कि तुम एक बार यहाँ आकर उससे मिलो। मेरा विश्वास है कि चाहे वह सबको भूल जाय, परन्तु अपने भाई को, तुमको नहीं भूल सकती।

तुम मेरे लिए कुछ न करो—मगर अपनी बहन के लिए तुम एक बार यहाँ अवश्य आओ....

तुम्हारा व्यथित मित्र—

मधु।

पत्र पढ़ते ही जीवन के निर्जीव रंगों में नवीन स्फूर्ति भर उठी।

कंचन का जीवित होना, उसके लिये हर्षोल्लास का मधुर सन्देश था।

कंचन जीवित है...

जीवित!

उसका मन-मयूर प्रसन्नता से नृत्य कर उठा।

उठकर खड़ा हो गया वह।

हाथ में छड़ी उठाकर, ठेगते हुए अपने कमरे की ओर बढ़ा।

“रामदास !....ओ रामदास !...”

उसने पुकारा !

“आया सरकार !...”

बूढ़ा रामदास दौड़ा आया।

“मेरा सूटकेस कहाँ है !...उसे ठीक करो...”

जीवन के चेहरे पर की सारी उदासीनता छुत हो चुकी थी और उसपर प्रसन्नता की हिलोर धिरक रही थी।

रामदास आश्चर्यचकित था—कई महीनों बाद उसने अपने युवक मालिक के मुख पर हर्ष की छाया देखी थी।

“कहीं जाइएगा क्या सरकार !—”

“मुझे बम्बई जाना है—गाड़ी आने में केवल एक घण्टे की देर

है—” जीवन बोला—“तुम खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? कौन-सी लिखावट पढ़ रहे हो मेरे मुँह पर ?...”

“आपका पैर अभी अन्ध्रा नहीं हुआ है सरकार !—” रामदास ने नम्रतापूर्वक कहा—“ऐसी हालत में आपका जाना ठीक नहीं...”

“मेरा पैर बिल्कुल ठीक हो गया है...हाथ ने छड़ी रहेगी और साथ में तुम—बस मैं बम्बई पहुँच जाऊँगा...”

“मगर सरकार !...”

“जाओ, जल्दी करो !”

और उसी दिन जीवन, हाथ ने छड़ी और साथ में रामदास को लेकर बम्बई को रवाना हो गया ।



कला अत्यन्त व्यथित थी, मधुकर की दुःखपूर्ण आकृति देखकर । वह चुपचाप सर लटकाये मेज के पास बैठा था । आँखों में छिपे हुए अश्रुकण बाहर आने को तड़प रहे थे । चेहरा एक ही रात में पीला पड़ गया था ।

मधुकर को क्या दुःख है ?

कला सोचने लगी, परन्तु उसकी समझ में न आया था । वह कल से मधुकर को दुःखित देख रही है, और उसने मधुकर से कई बार उसके उदासी का कारण भी पूछा है ।

परन्तु मधुकर है कि बताता नहीं ।

चुपचाप अगम वेदना, अकेले ही सहन कर रहा है ?

क्या कला को उसके दुःख में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है ?

क्या कला और मधुकर दो हैं ?

फिर मधुकर उससे अपनी वेदना क्यों छिपाना चाहता है ? क्यों नहीं वह कला को भी अपने दुख का कारण बता देता ताकि वह भी उसकी पीड़ा को अपने सीने से लगाकर आधे-आध बाँट ले ?

क्यों सेफ की ताली खो जाने का उसे शोक है ?

परन्तु सेफ की ताली, जो कल मेज पर से खो गई थी, आज वहाँ मेज के नीचे पड़ी हुई मिल गई है—

फिर क्यों वेदनाजन्य है वह ?

क्यों नहीं हँसकर बोलता ?

क्यों नहीं कला को भर आँख देखकर मुस्कराता ?

अबोध कला क्या जान सकती थी मधुकर के दुख का कारण ?

मधुकर के हृदय में दुर्दमनीय विचारों का संघर्ष हो रहा था ।

उसने कला से अपना दिल बहलाया था, उससे प्रेम करने लगा था—कंचन को मृत समझकर ।

और आज कला का प्रेम मुर्झाया हुआ उसके पैरों के पास खड़ा है और मृतक कंचन की निर्जीव प्रतिमा सजीव होकर उसके हृदय पर छा गई है ।

लालिमा को वह कंचन ही समझ रहा है । और परिस्थिति की जटिलता में फँसकर वह डूब-उतरा रहा है ।

लालिमा के कल के व्यवहार ने मधुकर के हृदय को सतशःद्रुक कर दिया ।

“उसने कल मुझे पहचाना ही नहीं !...एकदम भूल ही गई मुझे !...”

बढ़बड़ा उठा मधुकर ! यह भूल गया वह कि बगल की कुर्सी पर बैठी हुई कला ध्यानपूर्वक उसकी ओर देख रही है और उसकी हर एक बात सुन सकती है ।

कला उठकर मधुकर के पास आई । उसके कंधे पर हाथ रख दिया उसने, अतीव स्नेहपूर्वक । चौंक पड़ा मधुकर ।

“किसने आपको पहचाना नहीं ? कौन आपको भूल गई ?”— पूछा कला ने ।

“ओह तुम !....कला !...तुम !” अस्त-व्यस्त शब्दों में बोला वह ।

“तुम्हें क्या दुख है...” कला ने कहा—“मेरी बातों का उत्तर दो !...तुम्हें कौन-सी वेदना है ?”...

“तुम मेरे लिए परेशान मत हो कला !...जाओ, अपना काम करो...”

“तुम मेरे नजदीक आकर भी मुझसे दूर जा रहे हो मधू !....मुझे दुख न दो, रज़ाओ न ! अपनी व्यथा की कहानी मुझे बताओ....”

कला ने मधुकर को पकड़ लिया ।

मधुकर की वेदना उस स्नेहपूर्ण स्पर्श से द्विगुणित हो उठी ।

“कला !...मेरी कला !”...मधुकर ने सिसकती हुई कला के बेहोश शरीर को अपनी बांहों पर सम्हाल लिया—“मुझे कोई दुख नहीं है...”

“तुम मुझे धोखा दे सकते हो...”—कला ने कहा—“परन्तु अपने हृदय को धोखा मत दो...अपनी आँखों से छल न करो...”

“मैं किसी को धोखा नहीं दे सकता—किसी से छल नहीं कर सकता कला !...मुझे कुछ सोचने का अवसर दो...”

मधुकर ने कहा ।

कला, दुखित हृदय लेकर अपनी कुर्सी पर जा बैठी ।

उसी समय चपरासी ने वहाँ प्रवेश किया ।

“सेठजी आपको याद कर रहे हैं...”

मधुकर रायसाहब सेठ बिहारीलाल के आफिस रूम में आया ।

सेठ जी उस समय उत्तेजित भंगिमा धारण किये हुए कुर्सी पर बैठे थे । चेहरे पर क्रोध-जनित लालिमा छाई हुई थी ।

“आपने मुझे बुलाया है सर ?”....धीरे से पूछा मधुकर ने ।

“हाँ !”....रुखी आवाज में बोले सेठजी—“तुम अभी कल यहाँ आये हो और आज तुम्हारी शिकायत मेरे पास आ पहुँची....”

“कैसी शिकायत ! किसने शिकायत की है सर !”—आश्चर्य और बेवसी भरे स्वर में पूछा मधुकर ने ।

“दिनेश ने तुम्हारी शिकायत की है...उसका कहना है कि कल तुमने उसकी दोस्त मिस लालिमा के साथ अपमान-जनक बर्ताव किया था....”

“.....”

“उसने यह भी कहा कि तुमने मिस लालिमा का हाथ पकड़कर बेजा तरीके से अपनी ओर खींचा था...”

“.....”

चुप था मधुकर । वातावरण उसका शत्रु हो गया था !

“मेरी बातों का जबाब दो मिस्टर मधुकर !”—तड़पकर बोले सेठजी ।

“मैं बहुत शरमिन्दा हूँ सर !”—धीरे से कहा मधुकर ने ।

“शरमिन्दा हो...” बोले सेठजी—“शर्म नहीं आती तुम्हें ? डूब नहीं मरते तुम !....एक अपरिचित लड़की के साथ ऐसा करते हुए तुम्हें डर न लगा ! कला के साथ विश्वासघात करते हुए तुम न सहमे !....नादान युवक ! यदि कला को यह मालूम हो जाय, तो वह आत्म-हत्या कर ले...”

“.....”

“मैं कला का बाप हूँ...मैं उसका हृदय परख सकता हूँ...कला सब कुछ देख सकती है, परन्तु तुम्हें दूसरों का होते नहीं देख सकती....तुमने उसके कोमल दिल को खिलौना समझा—तुम मेरा सर्वनाश करने पर उतारू हो !...”

“मुझे क्षमा कीजिये....”

“मैंने जहरीले साँप को अपनी बेटी के गले से बाँध दिया था...”

बोले सेठजी—“अच्छा हुआ कि मैं उसके डँसे जाने से पहले ही सम्भल गया...”

आवेश में आकर सेठजी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और व्यग्रता पूर्वक कमरे में टहलने लगे ।

“मिस्टर मधुकर !...”

“जी !...”

“कल प्रातःकाल दस बजे तुम्हें अपना चार्ज देना होगा । मैं तुम्हें बरखास्त करता हूँ...”

“जैसी इच्छा आपको !”—गम्भीर बना हुआ बोला मधुकर ।

“इस समय तुम अपने डेरे पर जा सकते हो...”

लौट पड़ा मधुकर । अपने आफिस में आकर अपना हैट सरपर रखा और कमरे के बाहर जाने लगा । दौड़कर कला लिपट गई उससे । बोली—“कहाँ जा रहे हो मधू !...क्या कहा है पिताजी ने !...”

मधुकर का हृदय फट पड़ना चाहता था । उसने अपने को कला के बन्धन से छुड़ाया और बाहर निकल गया ।

फूट-फूटकर रो पड़ी कला । दौड़ी हुई अपने पिता के कमरे में आई ।

“पिताजी !....”

“क्या है !...” सेठजी का स्वर अत्यन्त गम्भीर एवं कठोर था ।

“आपने उनसे क्या कहा है पिताजी !...आपने उनको क्यों चले जाने दिया !...”

“चुप रहो !....” गरज पड़े सेठजी —“साँप से न खेलो—अपना दिल सम्हालो...”

“पिताजी !....”

“सर कहो...” तड़पकर बोले सेठजी—“तुम इस समय आफिस में हो, घर पर नहीं...जाओ, अपना काम करो...”

चली गई कला, अगम-वेदना का भार लिये ।

अपने कमरे में बैठे हुए रायसाहब सेठ बिहारीलाल प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न थे। उनके मस्तिष्क में कला और मधुकर के विचार कष्ट दे रहे थे।

सेठजी जानते हैं कि आज उन्होंने जो मधुकर को इतना डाँटा है, उससे कला को महान् दुःख हुआ है और वह जब से आफिस से आई है, अपने कमरे में पड़ी हुई बराबर रो रही है। उसके सिसकियों का स्वर यहाँ तक आ रहा है—

तो कहीं यदि कला यह सुन ले कि मधुकर ने उसके साथ विश्वासघात किया है, तब तो वह अपनी जान ही दे बैठे।

सेठजी को आज दिनेश की बातें याद आ रही थीं, जो उसने कुछ दिन पहले चलता हुई कार में उनसे कही थीं और उन्होंने उसे अपनी कार से उतारकर उसका अपमान किया था।

और आज वही बातें एकदम सत्य हो रही थीं और वह मधुकर, जिसे उन्होंने अपने कलेजे का चाँद समझा था, आस्तीन का साँप निकला।

सेठजी ने अपने पाइप में वरजीनिया तम्बाकू भरकर जलाया और कमरे में इधर से उधर टहलते हुए पीने लगे।

आधा घण्टा बीत गया, टहलते हुए, परन्तु सेठजी किसी निष्कर्ष पर न पहुँचे।

इतन में नौकर ने दिनेश के आने की सूचना दी।

दिनेश आया तो उसने देखा कि सेठजी की मुद्रा चिन्तित है और वे गम्भीरतापूर्वक कमरे में टहल रहे हैं।

दिनेश चुपचाप कमरे के अन्दर आ रहा और अत्यन्त नम्रतापूर्वक एक आराम कुर्सी सेठजी के पास खिसकाता हुआ बोला—“बैठिये चाचा !...”

सेठजी उसका मतलब समझ गये ।

वे जान गये कि दिनेश उनसे इस समय कोई आवश्यक बात कहने आया है ।

वे आराम कुर्सी पर धीरे से बैठ गये । पाइप का एक कश खींचा ।

और गम्भीरतापूर्वक पूछा—“क्या है दिनेश !...”

“चाचा !” दिनेश बोला—“आज मैं बहुत साहस करके आपसे मिलने आया हूँ... उस दिन आप व्यर्थ ही मुझपर रुष्ट हो गये । अन्त में अब आपके सामने मधुकर का पोल खुल गई !...”

“तुम ठोक कह रहे हो दिनेश !... उस दिन मैंने तुम्हारी बातों में पर्सनल जेलसी की भूलक पाई थी, इसीलिए मैं तुम पर रुष्ट हुआ था... अब मधुकर के कपट ने मुझे सावधान कर दिया है...”

“वह भँवगा है चाचा !... कितनी ही कलियों का पराग लूट चुका है !”... दिनेश ने कहा—“मैं तो उसे कालेज से ही जानता था इसलिए आपको आर कला को मैंने सावधान करना चाहा था—परन्तु आप लोगों ने मेरी बातों का उल्टा ही मतलब लगाया...”

“.....”

सेठजी चुप रहे । केवल पाइप का कश एक बार जोर से खींचा ।

“आज मैं उससे मिलने के लिए, उसके डेरे पर गया था, तो वह वहाँ था नहीं । उसकी घाय ने मुझे उसके कमरे में बैठकर प्रतीक्षा करने के लिए कहा । सहसा उसकी मेज पर मुझे कुछ ऐसे कागजात मिल गये, जिन्हें आपको दिखलाना मैंने आवश्यक समझा । इसलिये उन्हें चुरा लाया हूँ, केवल आपको दिखलाने के लिए.... यह है उसकी पर्सनल डायरी...”

“.....”

दिनेश ने एक छोटी-सी किताब सेठजी के हाथों में दे दी ।

सेठजी उसे उलट पुलट कर देखने लगे ।

“इसे पढ़ने पर आपको मालूम होगा कि मधुकर ने अपने अभिन्न मित्र जीवन की बहन कंचनमाला पर अपना जाल फेंका था और उसका सतीत्व भी नष्ट कर चुका था—अन्त में वह कंचन को छोड़कर कला के साथ यहाँ चला आया और उस तड़पती हुई बालिका ने तड़प-तड़पकर आत्म-हत्या करली !”

“.....”

सेठजी ने क्रोध से अपना सर हिलाया ।

“उसके बाद उसने मिस कला पर अपना जात फैलाना शुरू किया और वह सफल भी हो गया होता, मगर तबतक उससे मेरा झगड़ा हो गया और आपने उसे पूना ट्रान्सफर कर दिया । पूना जाकर भी, वह अपनी आदत से बाज नहीं आया और मिस आइडा रिचेलो को...”

“क्या कहते हो दिनेश !...”

सेठजी ने आश्चर्य से दिनेश की ओर देखा ।

“आप सब कुछ इस डायरी में पढ़ सकते हैं चाचा !”...दिनेश बोला—“यह स्वयं उसके हाथ की लिखी हुई डायरी...”

“कमीना कहीं का !”...सेठजी ने मधुकर को गाली दी ।

“पूना से आकर, जब उसने मिस लाजिमा को मेरे साथ देखा, तो उसपर रीझ गया और उसका अपमान करने का दुस्साहस किया...” दिनेश कहने लगा—“उसके विश्वासघात के ओर कितने ही गुप्त प्रमाण हैं, जिन्हें मैं नहीं जानता, कोई भी नहीं जानता । आज कल उसने एक बच्चे को पाल रखा है । कहता है कि यह उसके दादी की धरोहर है, परन्तु मेरा खयाल है कि वह उसके किमी प्रेमिका का पाप है...”

“.....”

दाँत पीसा सेठजी ने और डायरी के पन्ने उलट-पुलट कर देखते रहे ।

कुछ देर तक नीरवता रही ।

“एक बात उसके विषय की और है चाचा !...”

“कहो !....”

“बात बहुत भयानक है और मुझे भय है कि आप मुझसे रुठ न हो जाँय...”

“तुम सारी बातें मुझे साफ-साफ सुना दो दिनेश !...”

“आपने परसों उसे सेफ की ताली दी थी न ?”

“हाँ !” बोले सेठ जी ।

“उसमें कितने रुपये थे ?...”

“सत्तर हजार !...कल पहली तारीख है न ? मैंने उसे वे रुपये कलकों को बाँटने के लिए सौंपे थे....”

सेठजी ने कहा ।

“मगर चाचा ! अब वे रुपये सेफ में नहीं हैं...”

“क्या हुआ सब रुपये !...” चौककर पूछा सेठजी ने

“मधुकर ने वे सब रुपये चुराकर, अमर के नाम से पर्शियन बैंक में जमा कर दिये हैं...”

“अमर कौन है ?—”

“वही छोटा-सा बच्चा !—” दिनेश बोला—“पर्शियन बैंक की पासबुक भी मैं उसकी मेज पर से चुरा लाया हूँ । अभी आज ही तो उसने रुपये जमा किये हैं !...”

दिनेश ने जेब से पासबुक निकालकर सेठजी को पकड़ा दी ।

“वह आपको बरबाद करना चाहता था चाचा !...” दिनेश कहने लगा—“सोचा था उसने कि वह आपसे रुपये चोरी चने जाने का बहाना कर देगा और तब आप पहली तारीख को बेतन न बाँट सकेंगे और आप को दूसरे बैंक से उधार लेना पड़ेगा—इस तरह आपके बैंक की सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी...”

सेठजी ने ध्यान से पासबुक देखी और तब चिल्ला उठे—“नीच कहीं का—मैं उसे अभी पुलिस में देता हूँ ...”

“धैर्य रखिये चाचा!—” दिनेश आत्मीयतापूर्ण ढंग से बोला—
 “सोच-समझकर काम कीजिये। पहले कल दस बजे उससे चार्ज ले लीजिये, तब उसे पुलिस में सौंपिये...”

“ठीक है—” सेठजी बोले... “अब तुम जाओ—मेरा दिमाग परेशान हो रहा है—मैं एकान्त चाहता हूँ...”

दिनेश उठ खड़ा हुआ।

बोला—“मैंने आपको सावधान कर देना अपना कर्तव्य समझा—
 अब आप जानें... मगर एक बात का ध्यान रखियेगा चाचा ! कि कहीं भी किसी से मेरा नाम न बतलाइएगा...”

दिनेश चला गया, तो सेठजी मधुर की डायरी ध्यानपूर्वक पढ़ने लगे।

लगभग दो घण्टे तक वे उस डायरी को पढ़ते रहे और अन्त में उन्होंने उसे क्रोध से दूर फेंक दिया।

उस रात—

सेठ बिहारीलाल सो न सके। पलंग पर लेटे, तो दुर्दमनीय विचार-
 मूखला ने उन्हें सोने न दिया।

वे कमरे में टहलते रहे और पाइप का कश खींचते रहे।

दूसरे दिन !

प्रातःकाल उन्होंने नाश्ता भी नहीं किया—

नौ बजे भोजन भी नहीं किया—

और कपड़े पहनकर बैंक जाने को तैयार हो गये।

कार पर आकर बैठे ही थे कि उन्हें कोई भूली हुई बात याद हो आई। वे कार पर से उतरकर कला के कमरे की ओर बढ़े।

कला भी क्लान्त मुखाकृति लिए हुए बैंक की तैयारी कर रही थी।
 सेठजी ने देखा कि आँखें लाल हो रही हैं, जैसे वह रात भर रोती रही हो।

कला ने देखा कि सेठजी का चेहरा अत्यन्त गम्भीर है जैसे शान्त समुद्र का वज्र तूफान आने के पहले गम्भीर हो जाता है ।

“कला !...”

“जी !....”

“आज तुम बैंक न जा सकोगी....”

“क्यों ?...”

“मेरी आज्ञा !...”

और कला को कुछ भी पूछने का अवसर न देकर सेठजी लौट पड़े । कार पर बैठ गये । कार चल पड़ी ।

बैंक के चपरासी, सेठजी को इतने सवेरे आया हुआ देखकर आश्चर्य चकित रह गये । सहमकर वे एक दूसरे से कानाफूसी करने लगे ।

उस समय तक बैंक में केवल कुछ जूनियर क्लर्क आये थे और कोई नहीं आया था । केवल साढ़े नौ बजे थे अब तक ।

सेठजी लिफ्ट द्वारा ऊपरी मंजिल पर आये और आफिस में जाने के बजाय मधुकर के आफिस में घुस पड़े ।

कमरा नीरव था ।

सेठजी ने एक ताली निकाली । वह ‘मास्टर की’ थी, बैंक के सब सेफ उस ताली द्वारा खोले जा सकते थे ।

उस ताली से सेठजी ने मधुकर का सेफ खोल डाला—

और दिनेश की बातें साकार होकर उनके नेत्रों के समक्ष नृत्य कर उठीं ।

सेफ में एक भी रूपया न था—

सेठजी ने सेफ बन्द कर दिया और तब अपने आफिस में आये ।

आटोमैटिक फोन उठाकर पुलिस स्टेशन से कुछ बातें की और पुनः रिसीवर रखकर पाइप पीने लगे ।

तो मधुकर, छली और विश्वासघाती ही नहीं, चोर भी है ।

मधुकर !

उसकी दशा विचित्र-सी थी। कल शाम से ही उसे अपनी डायरी नहीं मिल रही थी। घाय ने बताया था कि कोई सज्जन उससे मिलने आये थे, जिसे उसके कमरे में बैठा दिया था।

मधुकर की समझ में ही नहीं आया था, कि उससे मिलने आनेवाला वह व्यक्ति कौन था और उसकी डायरी क्यों चुरा ले गया।

दस बजने पर जब वह बैंक जाने को तैयार होकर बाहर निकला, तो एक टैक्सी से व्यथित आकृति लिये कना को उतरते देखा।

वह मधुकर के सामने चली आई।

मधुकर ने उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

“मेरा कहना मानो मधुकर !”...कला भीगे स्वर में बोली—“तुम आज बैंक न जाओ....”

“क्यों ?...”

“कल रात मैं दिनेश पिताजी से मिलने आया था—बड़ी देर तक पिताजी से न जाने क्या बातें करता रहा...आज पिताजी अत्यन्त गम्भीर हो रहे हैं। मुझे बैंक न जाने की आज्ञा दे गये हैं...आज उनका इरादा भयानक मालूम हो रहा है मधू ! तुम बैंक न जाओ...”

“मुझे जाना ही होगा कला !”—मधुकर बोला—“मुझे आज अपना चार्ज देना है। न जाने से, मेरे मुँह पर कलंक का टीका लग जायगा...”

“चाहे जो कुछ हो, मैं तुम्हें न जाने दूँगी आज !”—कला मधुकर का हाथ पकड़कर भीतर घसीट ले गई—“तुम मेरा खयाल कर आज बैंक जाने का इरादा छोड़ दो मधू !”

“यह नहीं हो सकता कला !...तुम मेरा सब कुछ लूटकर अब ईमान मत लूटो...सेठजी को मेरे ईमान पर संदेह हो जायगा। अभी परसों ही उन्होंने मुझे सत्तर हजार रुपये दिये हैं...”

“तुमने कभी भी मेरा कहना नहीं माना मधू !...मेरे मधू आज ! मेरा कहना मानो। मैं जानती हूँ, पिताजी का क्रोध भयंकर होता है...”

कला ने मधुकर का आवेगपूर्ण शरीर अपने बाहुओं में कस लिया ।
परन्तु मधुकर ने उसे धीरे से अपने शरीर से अलग कर दिया ।

“अपने को समझालो कला !...”

कहता हुआ मधुकर कमरे से बाहर निकल गया ।

अभी वह आफिस में कुर्सी पर आकर बैठा ही था कि रायसाहब सेठ
बिहारोलाल आ पहुँचे ।

“मुझे अपना चार्ज दो मधुकर !”—

कुर्सी पर बैठते हुए गम्भीर शब्दों में सेठजी ने कहा ।

“आल-राइट सर !...”

कहकर चुपचाप मधुकर उन्हें चार्ज देने लगा । सब कागजात
न्योरेवार सुपुर्द कर दिये ।

और तब पाकेट से ताली निकालकर सेफ की ओर बढ़ा ।

धीरे से उसने सेफ का पल्ला खोला ।

उसके पैरों तले से जमीन खिसक पड़ी, भयभीत शरीर जैसे आसमान
पर भूलने लगा, धड़कते हृदय पर सॉप लोट गया ।

सेफ खाली था ।

नोट हवा बन गये थे ।

“क्या है !...” तीव्र स्वर में पूछा सेठजी ने ।

“रुपये !...नोट...सर !...”

मधुकर की जवान काँपने लगी थी—पैर पेड़ की टहनियों बन गये थे ।

“कहाँ हैं रुपये ?...कहाँ हैं नोट....”

घुड़क कर पूछा सेठजी ने ।

“इसी में थे सर !...अभी परसों मैंने गिनकर रखा था...”

“तो क्या हुए सब नोट !....”

कुर्सी पर से उठकर सेठजी मधुकर के सामने आ खड़े हुए । क्रोध
से उनका सारा शरीर काँप रहा था ।

“.....”

मधुकर सर नीचा किये चुपचाप खड़ा था ।

“विस्वाशघाती ! आस्तीन के सॉप !”—गरज पड़े सेठजी—“ईमान-दारी का ढोंग रचनेवाले जहरीले नाग ! बता, रुपये क्या हुए !...”

“.....”

“कहता क्यों नहीं नीच ! कि रुपये तूने पाशियन बैंक में जमा कर दिये हैं...”

“क्या कहते हैं आप, सर !” मधुकर ने चौंककर देखा सेठजी की ओर ।

“ठीक कह रहा हूँ !”—तड़पकर बोले सेठ बिहारीलाल—“मैं तेरी सारी करतूत जान चुका हूँ । तूने बैंक से सत्तर हजार रुपये चुराकर, अपने छोकरे अमर के नाम, पाशियन बैंक में जमा कर दिये हैं । तेरी पास बुक मेरे हाथ लग गई है....”

“मेरी समझ में कुछ नहीं आता सर !....क्या कह रहे हैं आप !”

“ऐसे समझ में नहीं आयेगा....”

लपक कर सेठजी ने कॉलिंग बेल पर उँगली रखी ।

“मैं सब प्रबन्ध पहले ही कर चुका हूँ !”...कहा उन्होंने ।

दूसरे ही क्षण एक पुलिस इन्स्पेक्टर के साथ कई पुलिसमैन वहाँ प्रा पहुँचे । मधुकर के हाथों में हथकड़ी भर दी गई ।

वे हाथ, जो कभी घड़ी के कोमल पट्टों से सुशोभित होते थे, आज फ़ोरे लौह-बन्धन में तड़फड़ा उठे ।

मधुकर के नेत्रों में आँसू आ गये । गला अवरुद्ध हो गया । कुछ बहना चाहा उसने, मगर कह न सका ।

निरीह व्यक्ति, जब सब तरफ से अपने को असक्त पाते हैं, तो सिखा सॉस बहाने के ओर कर ही क्या सकते हैं !

“मैं अपराधी नहीं हूँ सेठजी !...”

बड़े प्रयत्न से उसके मुख से ये शब्द निकल सके ।

“चुप रह कमीना कहीं का...” गरज पड़े सेठजी—“दोबली कुत्ते अपने को निरपराध कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती !...”

“मैंने कुछ भी नहीं किया है—मेरा कुछ भी अपराध नहीं...”

मा बाप से बिछुड़ा हुआ अनाथ युवक, निरीह बालक-सा रो पड़ा । गाल पर आँसू की बूँदे लहरा उठीं ।

“अपने निरपराध होने का सबूत अदालत के सामने देना !... क्रुद्ध स्वर में सेठजी ने कहा ।

“मैंने अपना रक्त माँस सुखाकर आपकी जो सेवा की थी, उसका पुरस्कार आपने मेरे हाथों में हथकड़ी डलवा कर दिया है... खैर ईश्वर की मरजी । एक दिन आप ईमानदार नौकर के लिये तरसोंगे...”

मधुकर ने अपनी आँखें पोंछ डाली ।

“ऐसे ही ईमानदार होते, तो अब डूब मरते....”—सेठजी ने मरज कर कहा—“ईमानदार व्यक्ति इस तरह कोरी बातों से अपना ईमान प्रदर्शित नहीं करते । वे अपमान सहने के बदले, मृत्यु को आलिंगन करते हैं...”

“.....”

सिर नीचे किए हुए मधुकर, सिपाहियों के बीच में चल पड़ा । उसकी आँखें ऊपर नहीं उठ रही थीं ।

बैंक में खलबली थी । सभी का हृदय मधुकर की गिरफ्तारी देखकर पसीज उठा । खुशी थी तो केवल एक व्यक्ति को—वह था दिनेश ।

जब मधुकर सड़क पर आया, तो उसकी दृष्टि एक ओर खड़ी सुन्दरी लालिमा पर पड़ी । वह चौंक पड़ा, उसके नयनों में उमड़ आये हुए अश्रुविन्दु देखकर ।

पुलिस की लारी बाहर खड़ी थी । पुलिस से घिरा हुआ मधुकर उसपर जा बैठा । लारी दौड़ चली । चमचमाती हुई सड़क लारी के पहियों का आलिंगन कर चीत्कार उठी ।

लारी चली गई, तो लालिमा ने अपने नेत्र पोंछे और अपने मेज के पास आ बैठी ।



रायसाहब सेठ बिहारी लाल की सारी मानसिक शान्ति लुप्त हो चुकी थी । वे अपने कमरे में बेचैनी से टहलते हुए पाइप पी रहे थे ।

सन्ध्या का समय था थोड़ी देर पहले ही रक्तक्षित प्रदोष पश्चिमाकाश पर मुस्कुरा कर लुप्त हुआ था ।

सेठजी के अन्तराल में संघर्ष मचा हुआ था । यद्यपि आज मधुकर को पुलिस के हाथों सौंपकर, एक बार उन्होंने सन्तोष की साँस ली थी—परन्तु मानसिक आवेग शान्त होते ही उनका हृदय उन्हें धिक्कार उठा था ।

उफ् मधुकर, जिसने उनके बैंक की उन्नति के लिये अपना सारा मस्तिष्क लगा दिया था—जिसने अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा नई स्कीम निकाल कर, सागर बैंक लिमिटेड को बम्बई का अग्रगण्य बैंक बना दिया था—

उस मधुकर को उन्होंने जेल के सीखच्चों में बन्द होने को बाध्य किया !

उसी को जार-जार रुलाकर पुलिस के हाथों सौंप दिया !

सेठजी का हृदय अपने प्रति प्रबल घृणा से भर उठा ।

उन्होंने पाइप मेज पर रख दी और आराम कुर्सी पर सर मुकाकर बैठ गये ।

उनके नेत्रों के समक्ष, गिरफ्तारी के समय का मधुकर का अश्रुपूर्ण मुख मण्डल चित्रित हो उठा ।

उफ़ ! वह निर्दोष था—

उसकी मुखाकृति कह रही थी कि वह निर्दोष है—

उसके आँसू कह रहे थे कि वह निरपराध है—

उसकी चीत्कार कह रही थी कि वह निश्छल है—

फिर क्यों उन्होंने उसके साथ निर्दयता का व्यवहार किया !

क्यों उसके आँसुओं की अवहेलना कर उसे बन्दी बनाया !

क्यों उसकी चीत्कार ठुकरा कर, उसे जेल भेजवाया !

हाथ मलने लगे सेठ बिहारी लाल ।

अपनी हथेलियों से अपनी आँखें बन्द कर लीं उन्होंने ।

थोड़ी देर तक वे इसी भंगिमा में बैठे रहे । फिर एकाएक आराम कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और पाइप जलाकर पीते हुए पुनः कमरे में टहलने लगे ।

नहीं !

वह निर्दोष नहीं था—

वह निपराध नहीं था—

उसने बैंक के सत्तर हजार रुपये चुराकर पार्शियन बैंक में जमा किये थे ।

वह कला पर प्रेम की डोर डालकर उसे, अपनी अन्य प्रेमिकाओं की भाँति, मृत्यु के मुख में भोंकना चाहता था ।

उसकी चोरी के लिए, उसका पासबुक साक्षी था—

उसके विश्वासघात के लिए उसकी हस्तलिखित डायरी गवाह थी ।

और ये दोनों वस्तुयें सेठजी को दिनेश द्वारा प्राप्त हुई थीं ।

दिनेश !

जिसे कभी सेठजी प्रथम श्रेणी का धूर्त समझते थे और जिसने मधुकर की पोल खोलकर सेठजी की सहानुभूति प्राप्त की थी—

मधुकर था दोषी—अवश्य अब जेल में चार साल तक चक्की पीसते-पीसते उसे अपराध का दण्ड भोगना पड़ेगा ।

सेठजी ने अपने क्षणिक निश्चय द्वारा अपने मस्तिष्क को शान्ति प्रदान की और पुन आराम कुर्सी पर आ बैठे ।

फोन का रिसीवर उठाकर उन्होंने कोई नम्बर मिलाया और तब अपने अटार्नी मिस्टर एन० कुलकर्णी की मुकदमे की ठीक से पैरवी करने का आदेश देकर रिसीवर रख दिया ।

उसी समय कला ने उनके कमरे में प्रवेश किया ।

सेठजी ने देखा कि उसकी भंगिमा उद्दीप्त है, आँखें रोते-रोते सूज आई हैं, चेहरा व्यथा से मलीन हो रहा है ।

“पिताजी !”...कला सेठजी के निकट चली आई ।

“आओ बेटी !...”

सेठजी के स्वर में वह मिठास थी, जो बकरे का गला काटने के पहले कसाई के स्वर में होती है—

जो हिरण को फँसाने के पहले, शिकारी की बंशी-ध्वनि में होती है—
कला सेठजी की मेज का कोना पकड़कर खड़ी हो गई ।

“मैं आज आपसे कुछ बातें करने आई हूँ पिताजी !”...कला का स्वर कण्ठ था, फिर भी उसमें तेजो थी—

“क्या बात कहना चाहती हो बेटी ?”—सेठजी ने पूछा—“बैठ जाओ....”

“नहीं !...ऐसे ही ठीक है !”—कला ने कहा—“मैं आपसे यह पूछने आई हूँ कि आपने, सब कुछ जानते हुए भी, मेरे रास्ते में काँटे क्यों बोये ? ..मेरी दुनिया क्यों उजाड़ी ?...मेरा बसेरा क्यों नष्ट किया ?...”

“कला !...” उसे शान्त करने के स्वर में बोले सेठजी ।

“आपने, आँखें रखते हुए भी सब कुछ देखने का प्रयत्न क्यों न किया ?...आपने मेरे हरे-भरे बाग में बिनाशकारी पतझड़ क्यों उपस्थित किया ?....”

“बेटी !....”

“आपने मेरे दिल पर आरे क्यों चलाये !...आपने मेरे आँसुओं का मूल्य क्यों न समझा !...आपने मेरा सुहाग क्यों लूटा !...”

“कला....” सेठजी का स्वर कुछ तीव्र हो चला था ।

“आपने मेरी आशाओं पर तुषारापात कर दिया पिताजी !”—कला हड़ स्वर में बोली—“आपके सीने में जल्लाद जैसे पत्थर का हृदय है, एक बाप का कोमल कलेजा नहीं...आपने मेरा खून किया है । आपने मेरे अरमानों को अपने पैरों से ठोकर मारी है...”

“नादान लड़की !”—सेठजी तीव्र स्वर में बोले—“अपने को न भूल ! मैं तेरा पिता हूँ—तुझे कभी साँप के पास न जाने दूँगा...”

“मधुकर साँप है पिताजी !—”

“हाँ !...साँप है, आस्तीन का साँप !”—सेठजी बोले—“वह साँप जिसके काटने पर मौत की कोई दवा ही नहीं...”

“आपकी आँखों पर दिनेश का जादू चढ़ गया है पिताजी !...आपके मुख से दिनेश की घृणा बोल रही है...”

रोने लगी कला ।

उसकी अधीरता देखकर सेठजी कुछ नम्र हुए । उनको कला की अवस्था पर तरस आ गया ।

“कला !...”

सेठजी ने उठकर कला का हाथ पकड़ा और उसे एक दूसरी कुर्सी पर बैठा दिया ।

“अपने को सम्हालो कला !”...बोले सेठजी—“मैंने जो कुछ किया है, वह खूब सोच समझ कर । मैं तुम्हारा अहित नहीं चाहता । एक बाप अपनी बेटी को रोते नहीं देख सकता !...”

“आप मुझे सान्त्वना देना चाहते हैं पिताजी !”—बिलखकर बोली कला—“शीशे को पत्थर पर पटक कर अब उसे बातों से जोड़ना चाहते हैं !”

“मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ !...मधुकर अपराध था...”

“अपने कानों से मैं ऐसा नहीं सुन सकती पिताजी !...नहीं सुन सकती मैं !...चुप रहिये !...आप !...”

दौड़ती हुई कला कमरे से बाहर चली गई ।

सेठजी ने उसे रोकने का प्रयत्न न किया ।

कला के हृदय में मधुकर के लिए, जो रुदन-श्रोत उमड़ पड़ा था—वह केवल एकान्त में ही शान्त हो सकता था ।

सेठजी कला की दशा देखकर चिन्तित थे—

और कला मधुकर का जेल जाना सुनकर रो रही थी ।

खुश था, तो केवल एक व्यक्ति !

दिनेश !

इस समय वह अपने कमरे में मेज के पास बैठा हुआ प्रसन्न मुख से चाय पी रहा था ।

कभी-कभी वह दूसरी कुर्सी पर बैठी हुई शुष्क चेहरा लिए, लालिमा की ओर देख लेता था ।

लालिमा आज अत्यन्त उदास थी । जब से वह दफ्तर से आई थी, एक घूँट चाय भी न पी थी उसने ।

इस समय भी चाय की प्याली सामने रखे हुए वह न जाने क्या सोच रही थी ।

प्याली को छुआ भी न था उसने ।

“यह क्या !”—दिनेश बोला—“आपने चाय अब तक न पी !... ठंडी हुई जा रही है बेचारी आपके अधरों की प्रतीक्षा में...”

“आप इसे पी लीजिये—मेरी इच्छा नहीं है...”

लालिमा ने प्याली दिनेश के आगे सरकाते हुए कहा ।

“आप आज बहुत उदास दिखाई पड़ रही हैं ।” दिनेश ने कहा ।

“उदासी और प्रसन्नता तो अन्तस्थल से सम्बंधित हैं मिस्टर दिनेश । आप मेरी उदासी के लिये चिन्ता न करें...”

लालिमा ने कहा ।

“आपको उदास देखकर मुझे दुख होता है मिस लालिमा !...”

दिनेश ने लालिमा को लाल-लाल आँखों में देखते हुए कहा ।

“आपकी इस कृपा के लिये घन्यवाद !”....लालिमा बोली—

“मुझे आज मिस्टर मधुकर की गिरफ्तारी देखकर बहुत दुख हुआ...”

“क्यों ?”—आश्चर्य-चकित हो उठा दिनेश—“उसके प्रति आपके हृदय में इतनी सहानुभूति का कारण !....”

“इन्सान का दुख देखकर हृदय में सहानुभूति स्वयं हो जाती है.... उसका कोई कारण नहीं होता ।”...लालिमा बोली ।

“परन्तु अपराधी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना, अपराध को प्रोत्साहन देना है मिस लालिमा !....”

“जी नहीं !...किसी को सहानुभूति पाकर अपराधी के हृदय में ग्लानि उत्पन्न होती है और वह सदैव के लिए अपना चरित्र सुधार लेता है...”

“क्या आपका मतलब यह है कि आपके हृदय में मधुकर के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, वरन् उसकी सहायता करने का दृढ़ संकल्प भी है ?”—

दिनेश ने रुखे स्वर में पूछा ।

“जी नहीं ! मेरा मतलब आप बिल्कुल नहीं समझे !”—लालिमा बोली—“मैं मधुकर की क्या सहायता कर सकता हूँ ! सो भी जब आप उनके विरुद्ध हैं...”

“मैं हर अपराधी के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता हूँ मिस लालिमा....!”

“परन्तु मिस्टर मधुकर की मुलाक़ाति पर तो अपराधी के कोई लक्षण नहीं दीखते थे ?”

“मिस लालिमा !”—दिनेश बोला—“शायद आपने विष रस-भरा कनकघट, वाली कहावत नहीं सुनी है....”

“सुन चुकी हूँ...”

“सुन चुकी हैं !....फिर भी मधुकर के लिये आपके हृदय में करुणा का उदय हुआ है !...आश्चर्य है !”...दिनेश कहता रहा—“मिस लालिमा ! यदि मेरा वश चलता, तो ऐसे जलील को जमीन में कमर तक गाड़कर शिकारी कुत्ते के आगे छोड़ देता...”

“चुप रहिये !.. आप बड़े ही कठोर हैं...”

दिनेश ने देखा—लालिमा का मुख आवेशमय हो उठा था ।

“मेरा हृदय बहुत मुलायम है मिस लालिमा !”—दिनेश ने कहा—“परन्तु मधुकर की चेष्टाओं ने मुझे कठोर बना दिया है, मैं उससे घृणा करता हूँ...”

सचमुच दिनेश उससे घृणा करता है ।

उसकी घृणा के फलस्वरूप ही तो, मधुकर आज अंधकारपूर्ण कारागार में बन्द है ।

अंधकारपूर्ण कारागार !

और उसकी संगीन दीवारों से लगकर बैठा हुआ मधुकर !

अर्धरात्रि की नीरवता और निस्तब्ध नोड़ में पत्नी के पर फट-फटाने की आवाज ।

सोचता रहा है मधुकर !

आज वह कारागार में बन्द है ।

जो कभी सुन्दर युवतियों के कोमल पंखुड़ियों जैसे नेत्रों में भ्रमर बन कर बन्दी होता था—

वह आज इस भयावह कारागार में बन्द है ।

नियति की विडम्बना !

रात भर सोचता रहा मधुकर । नींद उसे बहुत थोड़े देर के लिए आई ।

प्रातःकाल हुआ तो बाल सूर्य की कीरणें जेल के प्रस्तर निर्मित दिवारों पर नाच उठीं ।

दस बजा, तो बैरक के वार्डर ने आकर मधुकर को खबर दी कि कोई उससे मिलने आया है।

मधुकर ने देखा तो वार्डर के पीछे, आँखों में आँसू बहाती हुई कला खड़ी थी।

वार्डन ने दरवाजा खोल दिया और करुण चित्कार के साथ दौड़ कर कला मधुकर के आगे गिर पड़ी।

“मधू !...मेरे मधू !...” अस्फुट स्वर में बोली वह।

“कला !...”

मधुकर ने निष्ठुरता पूर्वक कला को अपने से अलग कर दिया

“क्यों आई हो यहाँ कला !” तड़प कर बोला मधुकर।

“मधू !....मधुकर !....”

“जानता हूँ तुम क्यों आई हो !....”

“तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो मधू !...”

“तुमने मेरे साथ खूब न्याय किया है !...क्यों !...तुम्हारे बाप ने मेरे साथ खूब भलाई की !....

“तुम समझ नहीं रहे हो मधुकर !...”

“समझ रहा हूँ....” मधुकर बोला—“सब समझता हूँ मैं। तुम्हारे बाप ने मेरे सीने में खंजर मारा, अब तुम नागिन बनकर मुझे डँसने आई हो। तुम्हारे बाप ने मुझे जलाया, अब तुम नमक लेकर मेरे पास आई हो...”

“मधू !....”

चिल्लाकर कला पैरों के पास पुनः गिर पड़ी—

परन्तु मधुकर ने उसे उठाया नहीं।

“चली जाओ—कला !...मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो प्रेम है, अब उसे घृणा में परिवर्तित न करो...”

मुझे क्षमा कर दो मधू ! ...मैं निरपराध हूँ...”

“तुम निपराध हो और मैं अपराधी हूँ—यही कहना चाहती हो न

तुम !”—मधुकर का चेहरा लाल हो गया था, आवेश से—“तुम और तुम्हारे बाप निरपराध हैं, क्योंकि तुम्हारे पास सब अवगुणों को ढँकने के लिये पैसा है...”

“... ..”

“और मैं अपराधी हूँ, क्योंकि मुझे ईमानदारी प्रमाणित करने के लिये पैसे का अभाव है...”

“.....”

“चली जाओ कला !....अपने आँसू दिखाकर मेरी घृणा शान्त न करो....मैं चाहता हूँ कि अब आजीवन तुमसे, तुम्हारे बाप से तुम्हारे धन से, तुम्हारी सद्मानुभूति से घृणा करता रहूँ....”

“मधू !....”

“समय हो गया—आप—आप बाहर चलें—!”

वार्डर की गम्भीर आवाज थी ।

कला को बाहर आना पड़ा । कारागार का फाटक पुनः बन्द हो गया ।

धम्म से बैठ गया मधुकर इताश हृदय लिये हुए । उसने कला से जो कुछ कहा था, उसके परिणाम स्वरूप नयनों में आँसू का सागर उमड़ पड़ा ।



सागर बैंक लिमिटेड का विशाल भवन खड़ा था, अपना सर उठाये, आकाश चुम्बन करते हुए ।

और बैंक के दरवाजे के सामने खड़ा था जीवन, अपने अनुचर

रामदास के साथ—यह सोचते हुए कि कंचन और मधुकर से कैसे भेंट हो ?

कंचन को देखकर वह उसे कलेजे लगाना चाहता था—

और मधुकर को देखकर वह उस छलिया को पैरों से ठुकराना चाहता था ।

अन्त में उसने उस विशाल भवन की प्रत्येक मंजिल पर जाकर कंचन और मधुकर को खोजने का इरादा किया ।

“रामदास को वहीं बाहर खड़ा रहने का आदेश देकर वह लिफ्ट पर जा चढ़ा और विद्युत शक्ति द्वारा संचालित द्रुतगामी लिफ्ट ने उसे पलक भ्रमकते भर में पहली मंजिल पर पहुँचा दिया ।

वह छड़ी ठेकता हुआ उतर पड़ा ।

वह बैंक का करेन्ट अकाउन्ट्स सेक्सन था । बहुत से क्लर्क कार्य कर रहे थे ।

जीवन छड़ो के सहारे लँगडाता हुआ, कतार के बीच छुटे रास्ते पर धीरे-धीरे आगे बढ़ा ।

एक जगह चौककर खड़ा हो गया वह ।

जिस मेज के पास खड़ा हुआ था, उसपर सर झुकाये हुए एक युवती कार्य कर रही थी । काम में वह तल्लीन थी कि जीवन का आना वह न देख सकी थी ।

जीवन की विचित्र दशा थी । उसके पैर काँपने लगे थे—

शरीर में रोमांच हो आया था ।

“कंचन !”

जीवन ने रुद्ध कंठ से पुकारा ।

और चौककर उस युवती ने जीवन की ओर देखा ।

वह लालिमा थी ।

न जाने क्यों जीवन को देखकर उसका शरीर सिहर उठा था ।

“कंचन !...” जीवन ने पुनः मार्मिक स्वर में पुकारा ।

“.....”

लालिमा ने एक बार जीवन की ओर देखा तब पुनः सर झुकाकर अपने कार्य में तल्लीन हो गई ।

“कंचन !...” आर्तनाद के साथ पुकारा जीवन ने, जिससे सबका ध्यान आकर्षित हो उठा ।

सबने आश्चर्य के साथ देखा, सम्य वेश-भूषाधारी एक सम्भ्रान्त युवक लालिमा की मेज के पास खड़ा हुआ ‘कंचन, कंचन !’ की पुकार कर रहा है ।

परन्तु लालिमा सर झुकाये लिखती रही ।

“कंचन !....मेरी ओर देख, कंचन !...”

अब लालिमा ने सर उठाया । बोली—“आप मुझे पहचानने में भूल कर रहे हैं महाशय !...”

“भूल कर रहा हूँ ?” भोगी आवाज में बोला जीवन—“भाई कभी अपनी बहन को पहचानने में भूल कर सकता है !...”

“मैं कंचन नहीं, लालिमा हूँ...”

“नाम तुम्हारा चाहे जो कुछ हो, मगर तुम सच-सच बताओ कि मेरी बहन हो या नहीं !...”

“नहीं !...” सर नीचा था लालिमा का ।

“अपने हृदय से पूछो कि मेरी बहन हो या नहीं ?”—

“नहीं....”

“या भगवान् !...” जीवन का सारा शरीर काँप रहा था—“यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? वही स्वरूप, वही स्वर, वही बातचीत का ढंग—और मेरी बहन नहीं !...”

“.....”

चुप रही लालिमा ।

“क्या मैंने सचमुच अपनी बहन को खो दिया !...क्या मेरे बहन की ममतामयी आत्मा ही, लालिमा के इस कठोर पिंजरे में आई है...”

“.....”

लालिमा को अपने को सम्हालना मुश्किल हो रहा था। कैसे समझाये वह, इस मतिभ्रान्त युवक को ?

“कंचन !....” चिल्लाया जीवन ।

“.....” लालिमा चुप रही ।

“कंचन ! तुम कहाँ हो ?”

“.....”

“कंचन !...” पैर लड़खड़ा उठे जीवन के—“तू सामने बैठी है, और बोलती नहीं !”—जीवन लालिमा के पास आ खड़ा हुआ ।

और लालिमा के आरक्त कपोलों पर चट से जीवन की हथेली जा बैठी । “सब मुझे पहचानना भूल जाँय, लेकिन क्या तू मुझे भी धोखा दे सकती है !...”

लड़खड़ाते पैर, आवेगपूर्ण शरीर का बोझ न सम्हाल सके । दूसरे ही क्षण जीवन धड़ाम से जमीन पर आ रहा ।

“भैया !”

कहती हुई लालिमा दौड़कर जीवन के गिरे हुए शरीर से लिपट गई ।

जीवन में मानों वैद्युतिक संचार हुआ । उसने सर उठाया । उठकर खड़ा हो गया ।

“कंचन !...” मुख से शिथिल आवाज निकली ।

“भैया !...मेरे भैया !...”

“और लोगों ने देखा कि महीनों से बिछुड़े हुये दो भाई बहन, एक दूसरे से लिपटे खड़े हैं, रोते हुए ।

लालिमा कंचन थी और कंचन लालिमा !

एक जीवात्मा के दो स्वरूप नहीं थे—

वरन् एक शरीर के दो नाम थे—

“नादान लड़की !...” आँखों में आँसू भरे हुये बोला जीवन—
“मुझे छोड़ कर चली आई । यह न सोचा कि तेरा भैया मरता होगा
या जीता—एक पत्र भी न भेजा । मेरी टाँग तोड़ दी तूने...यह देख,
अब तक जुड़ न सकी...”

“.....” जीवन के कलेजे से लगी कंचन सिसकती रही,
रोती रही ।

जीवन उसका हाथ पकड़कर एक कोने में आया ।

“रोती क्यों है !...” बोला वह—“मुझे तो रुला-रुलाकर मार ही
डाला, अब तू क्यों रोती है !”

जीवन ने कंचन की आँखें पोंछ दी ।

“मैं सुनना चाहता हूँ कि तू यहाँ कैसे आई !...”

“.....” कंचन चुप रही ।

“मुझे बता—मैंने तुझे लूटा कर दिया । सारी बातें ठीक से मेरे
सामने कह...” जीवन ने प्यार से कंचन के सरपर हाथ फेरते हुए कहा ।

और धीरे-धीरे कंचन सब बताने लगी ।

जीवन सुनता रहा ।

मधुकर के प्रातः उसकी घृणा और बढ़ गई ।

इतने में आ पहुँचा दिनेश, जो अब तक किसी कार्यवश सेठजी से
मिलने गया था ।

“इन्हीं सज्जन ने मुझे बचाया था भैया !....” कंचन ने दिनेश
की ओर इशारा करके जीवन से कहा ।

“हलो जीवन !...” दिनेश जीवन की ओर बढ़ा ।

“हलो दिनेश !....” जीवन ने कहा ।

और दोनों ने हाथ मिलाया ।

“जीवन और दिनेश एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे और
कानपुर में एक-ही कालेज के विद्यार्थी रह चुके थे ।

जीवन जानता था कि दिनेश काला साँप है, क्योंकि वह कालेज में उसकी दुष्टता देख चुका था—अतः कंचन से यह सुनकर कि दिनेश ने ही उसे बचाया था और वह उसी के यहाँ रहती भी है—वह कुछ चिन्तित हुआ।

“कैसे आये जीवन ?....” पूछा दिनेश ने।

“अपनी बहन को लेने...”

“क्या मिस लालिमा !...”

“लालिमा नहीं, कंचन कहो !...” जीवन ने कहा।

“ओह !...”

कुछ सोचने लगा दिनेश।

“मधुकर कहाँ है !...” एकाएक उत्तेजित स्वर में पूछा जीवन ने—“कहाँ है मधुकर !... मैं उसके मुँह पर तमाचे मारकर उससे उसके विश्वासघात का बदला लूँगा—”

“आप उससे जेल में भेंट कर सकते हैं...” दिनेश हँसकर बोला।

“जेल में !”—आश्चर्य-चकित हो उठा जीवन।

“जी हाँ !...” दिनेश ने कहा।

“किसने भेजा उसे जेल ?”

“सेठजी ने...”

“क्यों !... क्या किया था उसने ?...”

जीवन ने अपनी छड़ी हाथ में ले ली और तनकर खड़ा हो गया था।

“उसने बैंक से सत्तर हजार रुपये चुराये थे...”

“चुप रहो दिनेश !...” तड़पकर बोला जीवन—“वह सब कुछ कर सकता है, मगर चोरी नहीं कर सकता... मैं उसे जानता हूँ... मैंने उसका हृदय पढ़ा है... मैं कहता हूँ कि वह चोरी नहीं कर सकता...”

“मगर मैं कहता हूँ कि उसने चोरी की !”—दिनेश बोला।

“चोरी का पता किसने लगाया !...”

“मैंने !....” और तब दिनेश ने सारी बातें विस्तारपूर्वक जीवन से बताई । पास-बुक की बात भी बता दी ।

सुनकर जीवन का माथा ठनका । वह कुछ सोचने लगा ।

“दिनेश !....” जीवन बात बदलकर बोला—“मैं चाहता हूँ कि कंचन अपने पोस्ट को रिजाइन कर दे और इसे मैं अपने साथ ले जाऊँ । मैं इसीलिए सेठजी के पास जा रहा हूँ । तुम एक कागज पर कृपया यह लिख दो कि कंचन का रिजाइन करना तुम्हें नापसन्द नहीं है । तुमसे ऐसा लिखवाना आवश्यक है, क्योंकि यहाँ पर तुम्हीं कंचन के अभिभावक हो....”

“हाँ-हाँ ! मैं अभी लिख देता हूँ...”

दिनेश ने एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखा और जीवन को दे दिया ।

जीवन ने उसे ध्यानपूर्वक देखा और फिर जेब में रख दिया ।

दिनेश अपनी मेज पर जाकर अपना काम करने लगा और जीवन कंचन के साथ ऊपरी मंजिल पर आया ।

लिफ्ट से उतरते ही जीवन की दृष्टि उस दरवाजे पर पड़ी, जिसपर लिखा था—“मैनेजिंग डायरेक्टर”—

जीवन ने समझा कि उसी कमरे में सेठजी होंगे, अतः वह धड़धडाता हुआ अन्दर घुस आया ।

दरवाजे पर खड़े हुए चपरासी ने उसे रोकने की चेष्टा की, परन्तु वह उसे धक्का देकर भीतर आ रहा ।

भीतर आकर चौंक पड़ा—

एक चिर-परिचित मूर्ति को कुर्सी पर बैठे देखकर ।

वही मूर्ति,

जिसकी पूजा वह अब तक करता आ रहा था और जिसने सालों पहले उसकी उमड़ती हुई प्रेमशिला को ठोकर मारकर धूल में मिला दिया था ।

कला थी वह !

चौक पड़ी जीवन को एकाएक इतने दिन बाद देखकर ।

जीवन का तमतमाया चेहरा उतर गया ।

“मिस्टर जीवन !” आश्चर्य से कला ने कहा ।

“मिस कला !...” घीरे से बोला जीवन और वापस लौटने लगा ।

“मिस्टर जीवन !...” कला ने जाते हुए जीवन को रोका—

“अब क्या मुझसे इतनी घृणा हो गई कि आकर भी लौटे जा रहे हैं आप !”

जीवन लौट आया । बोला—“नहीं मिस कला ! मैंने सोचा शायद आप मुझसे बातें करना पसन्द न करें...मैं तो आपके पिता से मिलना चाहता था...”

“क्यों !...”

“यही है मेरी बहन कंचन—इसी से रजिगेशन पेपर दाखिल कराना था । यह घर से रूठ कर चली आई थी....”

“ओह !....” कला ने कंचन की ओर देखा—“आप मुझे अपना पेपर लिखकर दे सकती हैं मिस कंचन !...इस कार्य के लिये आपका पिताजी के पास जाना ठीक नहीं....”

और कंचन ने एक कागज पर अपना इस्तीफा लिख कर कला को दे दिया । कला ने उसपर लिखकर फाइल में रख लिया ।

“मुझे आपसे कुछ शिकायत है मिस कला !” जीवन ने कहा ।

“क्या !...”

“यही कि मधुकर जेल चला गया और आपके हृदय की सारी सहानुभूति जड़-पत्थर बनकर यह सब देखती रही...”

“मैं विवश थी मिस्टर जीवन...”

“आपने मुझे भी सूचना न दी !”—जीवन आवेशपूर्ण शब्दों में बोला—“आप जानती थीं कि दुनियाँ में मधुकर का एक ऐसा दोस्त भी

है, जो उस नादान के लिये सब कुछ कर सकता है—सत्तर हजार रुपये की बिसात हो क्या अपनी जान तक दे सकता है...”

“मैं स्वयं परेशान थी मिस्टर जीवन !”—कला बोली—“अभी कल ही जेल गये हैं। तब से अब तक मुझे कोई बात ठीक मे सोचने का अवसर हो न मिला...”

“मैं इस विषय में आपके पिताजी से बातें करना चाहता हूँ...”

“अच्छा हो कि आप उनके पास न जायँ...वे आज न जाने क्यों बहुत क्रोधित हैं...”

“कोई बात नहीं...” जीवन बोला—“मैं उनसे बातें कर लूँगा। मुझे समय बहुत कम है...”

जीवन कमरे के बाहर निकल गया। कंचन थी उसके पीछे-पीछे बाहर आई।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल उद्विग्नतापूर्वक मुँह में पाइप दबाये अपने आफिस में टहल रहे थे।

चौक पड़े वे—जीवन को बिना इत्तला कराये कमरे में आते देखकर। वे जीवन को जानते न थे।

“कौन हैं आप !...” सेठजी ने तोखे स्वर में पूछा।

“.....”

जीवन ने चुपचाप अपना विजिटिंग कार्ड निकालकर उनके आगे बढ़ा दिया।

सेठजी ने एक क्षण ध्यानपूर्वक देखा—फिर पूछा—“क्या चाहते हैं आप ?”

“मैं मधुकर के विषय में आपसे कुछ बातें करने आया हूँ...” जीवन ने कहा।

सेठजी की भंगिमा एकाएक कठोर हो उठी।

“मैं उसके विषय में कोई बात करना नहीं चाहता...”

“क्यों !...”

“मैं उससे घृणा करता हूँ”—सेठजी बोले—“और यदि आप उसके मित्र हैं, तो आपसे भी !...आप तशरीफ ले जाँय...”

“जी नहीं !” दृढ़ स्वर में बोला जीवन—“आप ने मधुकर को जेल भेजकर मेरा जो अपमान किया है, मैं उसे सहन नहीं कर सकता....”

“मुझे मधुकर या आपके अपमान की परवाह नहीं—आप बाहर चले जाँय...” तड़पकर बोले सेठ जी ।

“एक दिन मधुकर को छोड़कर, आप पछुतायेंगे सेठजी !...मेरे रहते मधुकर जेल में अधिक दिन तक पड़ा नहीं रह सकता....”

“आपसे जो बने कर लीजियेगा !”—सेठजी के मुख पर घृणा थी ।

“मैं उसे छोड़ा लूँगा....” जीवन सरोप्र बोला ।

“मैं चार साल के लिए बन्द करा दूँगा...”

“आपकी क्या हस्ती है सेठजी, जो उसे....”

“तमीज से बातें करो...” गरजकर बोले सेठजी—“जानते हो तुम किसके सामने खड़े हो...”

“जानता हूँ....” घृणा पूर्वक जीवन ने कहा—“मैं खड़ा हूँ राय-साहब सेठ बिहारी लाल के सामने, जिसने गोरी सरकार के चरण चूमकर रायसाहबी पायी है, जो शेयरर्स के रूप्यों के बल पर सागर बैंक लिमिटेड का मालिक बन बैठा है ।

“.....”

अपना अपमान देखकर काँप उठे सेठजी ।

“और आप जानते हैं कि किसके सामने खड़े हैं !”—जीवन कहता ही गया—“आप एक ऐसे व्यक्ति के सामने खड़े हैं, जो आप जैसे दस बैंकों को खरीद कर गरीबों को बाँट सकता है और तब भी उसके पास इतना धन रह जाएगा कि वह दो-चार पुश्त बैठकर खा सके....”

तड़प उठे सेठ जी ।

बाहर आया तो रामदास अब तक खड़ा था । कंचन को देखकर बूढ़े रामदास की आँखों से आँसू बह चले ।

जीवन ने एक टैक्सी की, तीनों उसपर जा चढ़े । टैक्सी चल दी । रास्ते में कंचन ने कहा — “भैया !...”

रुक गई वह ।

जीवन कुछ सोच रहा था ।

बोला — “क्या है कंचन !...”

“उनको छुड़ा लो भैया !...चाहे जैसे हो...”

“वही तो मैं भी करने जा रहा हूँ !” — जीवन ने कहा — “वह नादान होकर अपनी दोस्ती भूल जाय तो क्या मैं भी वैसा करूँ... मैं उसे छुड़ाऊँगा....उसे तमाचा लगाने के लिये छुड़ाऊँगा....शैतान ने क्या कम दुख दिया है मुझे !”

टैक्सी पर्शियन बैंक के सामने आकर रुक गई ।

अकेला जीवन उतर पड़ा और मैनेजर के कमरे की ओर बढ़ा ।

आधे घंटे बातचीत करने के पश्चात् वह वापस लौटा और टैक्सी पर आकर बैठ गया ।

टैक्सी चल दी ।

इस बार जहाँ आकर रुकी, वह था बम्बई के प्रसिद्ध अटार्नी “कैथ स्मिथ एण्ड आरसन वेल्स” का आफिस ।

इस बार भी अकेला जीवन ही उनके आफिस में गया । लगभग दो घंटे तक वहाँ रहा ।

इसके बाद दिनेश के डेरे पर आकर कंचन ने अपना सब सामान लिया और तब टैक्सी रिट्ज होटल की ओर मुड़ी ।

समुद्र के समीप यह भव्य होटल बम्बई का एक प्रसिद्ध होटल है । जीवन यहीं आकर ठहरा था ।

अदालत में काफी भीड़ थी, क्योंकि आज मधुकर का मुकदमा था उस पर गबन का अपराध लगाया गया था ।

दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ी थी । रायसाहब सेठ बिहारी लाल दिनेश मिस्टर टामसन, मिस आइडा रिबेला आदि बैठे हुए थे ।

दूसरी ओर जीवन, कंचन तथा कुछ अन्य दर्शक बैठे थे । कला अनुपस्थित थी ।

पुकार हुई और सिपाहियों से घिरा हुआ मधुकर कठघरे में आ खड़ा हुआ ।

कंचन का हृदय चीत्कार कर उठा ।

रिबेला के नेत्रों में आँसू उमड़ आये ।

सेठ बिहारी लाल के मुख पर घृणा परिलक्षित हो उठी ।

दिनेश का मन-मयूर नाचने लगा ।

जीवन ने सर नीचा कर लिया ।

एक सप्ताह तक जेल यातना भुगतने के पश्चात आज मधुकर कचहरी में पहली बार उपस्थित हुआ था ।

उसकी आँखें जमीन की छाती पर गड़ी थीं ।

लोगों को यह देखकर परम आश्चर्य हुआ कि मधुकर की ओर से पैरवी करने के लिए बम्बई के सुप्रसिद्ध अधिवक्ता “केन्ट स्मिथ एण्ड आरसन वेल्स” तथा सबसे योग्य अनुभवी बैरिस्टर मिस्टर ज्यूडिथ ऐण्डसन उठ खड़े हुए हैं ।

अदालत में सन्नाटा छा गया ।

पहले सबूत पत्र की कार्यवाई प्रारम्भ हुई ।

सेठ बिहारी लाल और दिनेश आदि के बयान हुए ।

न्यायाधीश के यह पूछने पर कि सफाई पत्र का बैरिस्टर उन लोगों

से कुछ जिरह करना चाहता है या नहीं, मिस्टर ऐण्डरसन ने गम्भीरता पूर्वक सर हिलाकर क्रास क्वेश्चन के लिए अपनी अस्वीकृत दी ।

इसके बाद सफाई पक्ष के बयान हुए ।

मधुकर ने अपने बयान में अपने को सर्वथा निर्दोष बताया । उसने कहा कि वह कुछ भी नहीं जानता कि बैंक से रुपये किस प्रकार लुप्त हो गये और कैसे पर्सियन बैंक में अमर के नाम का खाता खुल गया ।

मधुकर के बयान के पश्चात् बैरिस्टर मिस्टर ऐण्डरसन ने कुछ कागज न्यायाधीश के हाथों में दिया । न्यायाधीश उन कागजों को ध्यान से देखने लगे ।

अदालत में पूरी निस्तब्धता थी !

मधुकर अपनी ओर से बैरिस्टर ऐण्डरसन को खड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो उठा था !

उसने जीवन और कंचन को पास-पास बैठे देख लिया था—परन्तु उसे कभी यह विश्वास नहीं था कि जिस जीवन के हृदय में उसके प्रति अगाध घृणा है, उसी ने उसका सहायता के लिए यह सब किया है ।

न्यायाधीश ने उन कागजों को मेज पर रख कर अपना सर उठाया और अर्थपूर्ण दृष्टि मिस्टर ऐण्डरसन पर डाली ।

मिस्टर ऐण्डरसन बोले—“माई लार्ड ! इस मुकदमे में मिस्टर मधुकर पर जो इलजाम लगाया गया है, वह एकदम गलत है । ये कागजात उनकी निर्दोषिता प्रमाणित करते हैं । यह सारा कार्य मिस्टर मधुकर का नहीं, एक दूसरे ही धूर्त का है, जिसने बैंक में जमा कर दिया और अभिभावक के स्थान पर मिस्टर मधुकर का हस्ताक्षर कर दिया ।....”

मिस्टर ऐण्डरसन ने न्यायाधीश की मेज पर रखे हुए वे कागज उठा लिये ।

बोले—“यह है वह अप्लिकेशन फार्म, जो बैंक में खाता खोलने के पहले प्रार्थी को भरना पड़ता है।....”

मिस्टर एण्डरसन ने उसमें से एक कागज निकाल कर न्यायाधीश के हाथ में दे दिया।

और कहते रहे—“माई लार्ड ! इस अप्लिकेशन फार्म के अक्षरों को ध्यानपूर्वक देखें और इनका मुकाबला इस खत के अक्षरों से करें....”

मिस्टर एण्डरसन ने एक दूसरा कागज भी निकालकर न्यायाधीश को दिया।

दूसरे कागज को देखते ही दिनेश का चेहरा पीला पड़ गया। यह वही चिट था, जिसे उसने सेठजी के नाम कंचन के रिजिग्रेशन के लिए लिखकर, जीवन को दिया था।

“माई लार्ड ! यह खत है, जिसे असल अपराधी ने लिखकर जीवन को दिया था।” मिस्टर एण्डरसन बोले—“आप देखेंगे माईलार्ड कि अप्लिकेशन फार्म तथा इस पर के हस्ताक्षर हूँ बहुत मिल रहे हैं... इसके अतिरिक्त पर्शियन बैंक का वह क्लर्क भी आया है जिसने अमर के नाम खाता खोला था।”

“उसे पेश किया जाय !” न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

एक दुबला पतला युवक आया और अभिवादन कर खड़ा हो गया।

उसने बताया कि जो व्यक्ति बैंक में अमर नाम से खाता खोलने आया था, उसकी आकृति भूला नहीं है। उसे देख कर पहचान सकता है।

मधुकर की ओर देखकर उसने बताया कि यह वह व्यक्ति नहीं है, जो उसके बैंक में आया था।

“यहाँ के आदमियों को देखो और पहचानो—क्या वह यहाँ हैं।”—न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

उस क्लर्क की निगाहें अदालत के चारों ओर और घूमने लगी।

रायसाहब सेठबिहारी लाल के बगल में बैठे दिनेश पर आकर उसकी दृष्टि अटक गई ।

दिनेश काँप उठा ।

“वह है माई लार्ड !” — क्लर्क बोला — “वही आदमी है...”

दिनेश ने उठकर भागना चाहा, मगर सेठ बिहारी लाल ने उसकी कलाई पकड़ ली ।

दूसरे ही क्षण दिनेश पुलिस के पंजे में था और मधुकर अपराधी के कटघरे से बाहर ।

जीवन उठ खड़ा हुआ ।

सेठ बिहारी लाल के पास आकर बोला — “देख ली सेठजी जीवन दास की शक्ति !... अब आप पर मधुकर की ओर से मानहानि का दावा होगा, तब आप मधुकर के बदले अपराधी के कटघरे में खड़े दिखाई देंगे !...”

जीवन अदालत से बाहर आया ।

कंचन भी उसके पीछे-पीछे आई ।

कंचन के हृदय में मधुकर के छूट जाने से प्रसन्नता तो थी परन्तु उससे भी अधिक थी उसके प्रति घृणा — उसका अपने प्रति कपट व्यवहार देखकर ।

मधुकर ही तो उसके विनाश का कारण था !

जीवन भी अपनी सफलता पर प्रसन्न था ।

उसने मधुकर को छुड़ाना चाहा था और छुड़ा भी लिया था — परन्तु उसके हृदय में मधुकर के प्रति जो तीव्र क्रोधाग्नि धधक रही थी, वह अब तक जरा भी शान्त नहीं हुई थी ।

क्योंकि मधुकर ही तो सारे अनर्थों का जड़ था ! उसी ने तो उसकी दुनिया उजाड़ी थी ।

मधुकर अदालत में हक्का-बक्का खड़ा था । उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि कैसे हो गया यह सब !

वह धीरे से मिस्टर एण्डरसन के सामने आ खड़ा हुआ ।

बोला—“धन्यवाद महाशय ! आपने मेरी इज्जत बचा ली....”

“मुझे क्यों धन्यवाद देते हैं महाशय ?”—मिस्टर एण्डरसन हँस कर बोले—“हम तो रुपये के गुलाम हैं । अगर आपके पाकेट में प्रयाप्त रुपये हैं, तो हम आपके लिए सच को झूठ और झूठ को सच करने को को तैयार हैं...”

“आपको मेरी तरफ से किसने खड़ा किया था ?”—पूछा मधुकर ने
“मिस्टर जीवन ने...”

मिस्टर एण्डरसन बोले ।

“ओह !...”

मधुकर तो जैसे आकाश से गिरा ।

जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास ही न हुआ कि जीवन ने उसकी इतनी सहायता की है ।

वह सोच भी नहीं सकता था कि जो जीवन उसके खून का प्यासा था, वह उसपर इतना सदय कैसे हो उठा !

“जीवन !...जीवन ने यह सब किया !...जीवन ने अपने दोस्त को बचाया !...जीवन ने अपने मित्र की ईमानदारी को अच्युत बनाया”

दौड़ पड़ा मधुकर, अदालत के बाहर, जीवन की खोज में ।

सड़क पर एक टैक्सी खड़ी थी—

स्टार्ट होना ही चाहती थी ।

उस पर कंचन और जीवन बैठे थे ।

मधुकर चिल्लाया—“कंचन !...जीवन !...”

ड्राइवर का हाथ स्टार्टर पर जा चुका था, तब तक मधुकर दौड़ता हुआ टैक्सी के पास जा पहुँचा ।

उसे देखकर जीवन ने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया ।

“कंचन !...” मधुकर हाँफता हुआ बोला—“कंचन !...”

“आप चले जाइये !”—कंचन ने घृणा से कहा, मगर उसका हृदय फट पड़ना चाहता था—“मैं आपको नहीं पहचानती...”

सर थामकर रह गया मधुकर, कंचन का वह व्यवहार उसके लिए असह्य था ।

“जीवन !...” वह जीवन का हाथ पकड़कर बोला ।

जीवन ने उसका हाथ भटक दिया । ड्राइवर से बोला—“टैक्सी बढ़ाओ...”

“जीवन !....मुझे माफ कर दो जीवन !...” मधुकर ने जीवन का हाथ कसकर पकड़ लिया ।

“चले जाओ मधू ! मुझे दुख न दो !...” जीवन ने कहा ।

“तुम्हें दुख होता है !...” मधुकर बोला, भीगे स्वर में—“फिर मुझे छुड़ाया क्यों !...”

“बताऊँ, क्यों छुड़ाया !....” जीवन बोला ।

“हाँ बताओ !...”

चट ! चट ! चट ! चट ! चट ! चट !

जीवन की हथेली ने जोरों के साथ मधुकर के गालों पर कई तमाचे जड़ दिये । मधुकर के नेत्रों के सामने अन्धकार छा गया । आँखों में आँसू उतर पड़े ।

“इसीलिये छुड़ाया था तुम्हें !”—जीवन अवरुद्ध कंठ से बोला—
“जीवन मैं केवल एक साध बाकी थी सो भी आज पूरी हुई...”

टैक्सी आगे बढ़ चली । कंचन ने देखा कि जीवन के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा निकल कर उसके गालों पर लुढ़क रही है ।

जीवन ने मधुकर के गालों पर तमाचे नहीं मारे थे, स्वयं अपने हृदय पर आघात किया था । जिसे तमाचे मारने की लालसा उसके हृदय में हिलोरे ले रही थी, आज उसे तमाचे मारकर वह स्वयं रो उठा था ।

उसी दिन कंचन और जीवन मिर्जापुर को रवाना हो गये ।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल की खोयी हुई शान्ति फिर वापस न आई। मधुकर, निष्कपट—मधुकर के प्रति उन्होंने जो निर्दय व्यवहार किया था, उसका ध्यानकर उनके हृदय में उथल-पुथल मच जाती थी।

दो महीने बीत चुके हैं—तब से सेठजी की आँखों में नौद नहीं है, संघर्ष मचा रहता है अन्तराल में।

इन दो महीनों के अन्दर सेठजी ने एक बार भी मधुकर को नहीं देखा। वह न जाने कहाँ था ?

दो एक बार सेठजी के हृदय में तीव्र प्रेरणा हुई कि मधुकर के डेरे पर चलकर उससे क्षमा याचना करें, परन्तु उनका आत्मसम्मान उनके मार्ग में बाधक बनकर आ खड़ा हो जाता था।

यद्यपि नीच दिनेश को उन्होंने प्रयत्न करके तीन साल के लिये जेल भेजवाया था, फिर भी उन्हें मानसिक शान्ति न प्राप्त हो सकी थी।

कला की शोचनीय दशा देखकर सेठजी और व्यथित थे।

इधर दो महीनों से बैंक का कारबार पूर्ववत् हो रहा था और कला नित्य बैंक जाती थी—

फिर भी वह दिन प्रतिदिन पीली पड़ती जा रही थी। चेहरा सूखता जा रहा था।

कला को यह कभी विश्वास न था कि मधुकर ने बैंक से चोरी की होगी।

और जब अदालत से मधुकर निरपराध छूट गया तथा दिनेश अपने कुकृत्य के लिये दंडित हुआ, तो उसका हृदय एक क्षण के लिये प्रसन्नता से नाच उठा। उसे आशा हो आई कि शायद मधुकर उसके पास मिलने के लिये आवे।

परन्तु वह निर्मोही नहीं आया।

तो कला की क्षणिक प्रसन्नता जैसे विलीन हो गई और आँखों में नदी उमड़ पड़ी ।

वह मधुकर से मिलना चाहती थी । मधुकर के लिये उसके हृदय में प्रगाढ़ प्रेम, अगम व्यथा तथा उत्सर्ग की भावना थी ।

परन्तु कला को मधुकर के डेरे पर जाकर मिलने का साहस नहीं हो रहा था—क्योंकि जेल में मधुकर ने उसके प्रति कितनी घृणा प्रकट की थी, कितना फटकारा था —

कि उसका हृदय पत्थर की फर्श पर गिरकर चकनाचूर हो गया था ।

और घर आकर उसने अपने हृदय के उन टूटे हुए टुकड़ों को, मधुकर की मधुर स्मृति तथा अपने नयन कोटरों के आँसुओं से, जोड़ा था ।

तो वह क्या मुँह लेकर मधुकर के डेरे पर जाती—

जब मधुकर उसके जुटे हुए दिल को, वाक्-वाणों से छलनी करने लगेगा—

जब वह उसके तड़पते हुए हृदय में अपनी बातों से ज्वाला उत्पन्न कर देगा—

जब वह उसकी मुरदा इसरतों को पैरों से ठोकरें मारकर तोड़ डालेगा—

तो वह क्या करेगी ?

कैसे जीवित रह सकेगी ।

इतनी सहनशक्ति नहीं थी उसमें ।

फिर भी एक दिन, अपना समस्त साहस संवरण कर अपने हृदय पर पत्थर रखकर, अपने दिल को कड़ा बनाकर, अपनी इसरतों को उसका कर, कला चल पड़ी मधुकर से मिलने ।

वहाँ पहुँच कर देखा उसने—

फलैट सूना था ।

मधुकर न जाने कब वह स्थान छोड़कर चला गया था—

कौन जाने कहाँ !

कला पर वज्र गिर पड़ा ।

अपने उमड़ते हुए आँसुओं को नयन-कटोरों में छिपाकर, अधूरे अरमानों को धड़कते हुए सीने में दबाकर, वह लौट आई ।

रोने लगी, तड़पने लगी ।

उसके रुदन और तड़पन ने सेठ बिहारीलाल के कठोर हृदय को भी मोम-सा पिघलाकर व्यथित कर दिया ।

वे धीरे-धीरे कला के कमरे में आये ।

“बेटा !....” उन्होंने पुकारा ।

कला ने सर उठाया । अपने पिता को देखकर अपनी आँखें पोंछ लीं ।

सेठजी बेचैनी के साथ उसके कमरे में टहलने लगे, जैसे कुछ सोच रहे हों ।

एकाएक रुककर बोले—“आँसू न बहाओ बेटा !...मैं मधुकर को वापस लाऊँगा...”

“आप !....”

प्रसन्नता की एक रेखा कला के मुख पर दौड़कर विलीन हो गई ।

“मैं अपने आत्मसम्मान को हथेली पर रखकर उसके पास जाऊँगा और उसके पैरों पर सर रखकर क्षमा मागूँगा । वह अस्वीकार नहीं कर सकता...मैं उसे बैंक में आकर काम सम्हालने के लिए बाध्य करूँगा...”

“वे नहीं आवेंगे पिताजी !...”

“वह अवश्य आयेगा—” बोले सेठजी—“उसके आगे जमीन पर लेटकर उसके हृदय में करुणा उत्पन्न करूँगा...”

सेठजी बाहर जाने लगे, तो रोका कला ने ।

“अब वे वहाँ नहीं रहते पिताजी !....”

“तब !....”

सेठजी की मुखाकृति गम्भीर हो उठी ।

वे भारो पैरों से टहलते हुए अपने कमरे में चले आये ।

उसके दस दिन बाद—

कला रविवार को रायल ऑपेरा हाउस में मॉर्निंग शो देखकर निकली ही थी और फजल भाई लिमिटेड के सामने खड़ी होकर किसी टैक्सी की प्रतीक्षा कर रही थी ।

एक टैक्सी आती देखकर उसने हाथ के इशारे से उसे रोका और उसपर जा चढ़ी ।

“कहाँ ले चलेँ इजूर !”—ड्राइवर ने पूछा ।

स्वर सुनकर एकदम चौंक पड़ी कला ।

उसने ध्यानपूर्वक ड्राइवर के मुख की ओर देखा ।

उसका सर चकरा गया । आँखों में आँसू उमड़ आये ।

उसके सामने टैक्सी ड्राइवर की पोशाक पहने, शुष्क आकृति धारण किये, खड़ा था मधुकर ।

तो मधुकर अब टैक्सी चलाता है !

जिस व्यक्ति के पास विद्वान मस्तिष्क है, वह इतना हेय कार्य करता है ।

कला का हृदय हाहाकार कर उठा ।

“मधू !...” उसने पुकारा ।

“.....”

मधुकर चुप रहा । दूसरी ओर देखता रहा ।

“मधुकर !...” कला का स्वर रोने लगा था ।

“आपको कहाँ ले चलेँ इजूर !”

गम्भीर स्वर में पूछा मधुकर ने ।

“बँगले ले चलो...”

मधुकर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी । तीव्र गति से टैक्सी न्यू क्वीन्स रोड द्वारा होती हुई मेरिन ड्राइव की ओर भाग चली ।

“मुझसे रुठ गये हो मधुकर !...”

“.....” मधुकर चुप रहा ।

टैक्सी भागती गई ।

“आजकल कहाँ रहते हो !...”

“.....”

मधुकर मौन रहा । कुछ नहीं बोला ।

कला चुप हो रही । आँखों से डुलक पड़नेवाले आँसुओं को पोंछ डाली ।

टैक्सी रुकी ।

कला का बैंगला आ गया था ।

वह उतर पड़ी और चाहतो थी कि मधुकर का हाथ पकड़कर उससे कुछ प्रार्थना करे, कि तब तक टैक्सी में पुनः गति आ गई ।

और देखते ही देखते चमकती सड़क पर दूर जाकर लुप्त हो गई वह टैक्सी ।

कला दिल थामकर रह गई ।

मधुकर टैक्सी भगाये लिये जा रहा था । कला के उस दो क्षण के मिलन ने उसके मस्तिष्क में तूफान की सृष्टि कर दी ।

चर्चगेट पर आकर उसने अपनी टैक्सी रोकी और हौल के पास बैठा-बैठा न जाने क्या सोचता रहा ।

जॉस सिनेमा का मार्निङ्ग शो अभी-अभी समाप्त हुआ था और भीतर से भीड़ निकली आ रही थी ।

कोई सज्जन आकर मधुकर की खाली टैक्सी पर बैठ गये ।

मधुकर ने बिना पीछे देखे हुए पूछा—“कहाँ ले चलेँ हजूर !...”

“अपने घर !...” उत्तर मिला ।

चौककर मधुकर ने पीछे देखा ।

सिहर उठा उसका बदन ।

रायसाहब सेठ बिहारी लाल बैठे थे उसकी टैक्सी पर ।

सेठजी यहाँस में मार्निङ्ग शो देखने आये थे । हाल में से

निकल जब वे बाहर आकर अपनी कार पर बैठे, तो एकाएक उनकी दृष्टि एक टैक्सी पर बैठे मधुकर की ओर जा पड़ी।

अतः सेठजी ने अपनी कार को पीछे-पीछे आने की आज्ञा दी और स्वयं आकर मधुकर की टैक्सी पर बैठ गये।

“मुझे अपने घर ले चलो !”—सेठजी बोले—“मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं....”

“मुझे क्षमा करें हजूर !..” मधुकर विवशता भरे स्वर में बोला—
“मुझे और अधिक परेशान न करें। गरीब आदमी हूँ, मुझे अपनी रोजी कमाने दें...”

“मुझे अपने घर ले चलो...”

सेठजी की गम्भीर आवाज में आज्ञा का भाव था।

मधुकर ने टैक्सी स्टार्ट कर दी।

गन्दगी चारों ओर थी। दो मंजिले मकानों के ऊपर खपड़ेल दिखाई पड़ रही थी। गरीबों की बस्ती थी वह।

मधुकर टैक्सी से उतर कर चुपचाप एक घर में घुसा।

सेठजी भी पीछे-पीछे आये।

घर में घुसते ही सेठजी की दृष्टि एक धाय पर पड़ी, जो लगभग साल भर के एक शिशु को पालने पर झुला रही थी।

एक मामूली चारपाई की ओर इशारा कर मधुकर बोला—“उस पर बैठें हजूर !..”

“हमें हजूर मत कहो !....” सेठजी चारपाई पर बैठते हुए अत्यन्त गम्भीर स्वर में बोले—“बाबूजी कहो मुझे...जैसा तुम पहले कहा करते थे...मैं तुम्हारे मुख से एक बार पुनः वही शब्द सुनना चाहता हूँ...”

“यह कैसे हो सकता है हजूर !”—मधुकर बोला—“आपकी मैं...”

चौककर रुक गया मधुकर।

उसने देखा कि गम्भीर बैठे हुए सेठजी की आँखों से एकाएक अश्रुधारा बह निकली ।

“आप...हज़ूर ! आप...”

मधुकर की समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे !

“मुझे क्षमा कर दो मधुकर !”—आर्द्रस्वर में बोले सेठजी—
“मैं बहुत दुःखी हूँ....कला मर रही है...बैंक उदास है...”

“मैं क्या कर सकता हूँ हज़ूर !...” मधुकर के शब्दों में हड़ता थी ।

“तुम मेरे साथ चलो मधुकर !—”

“आपके साथ चलूँ !....” मुखाकृति पर व्यंग मिश्रित करुणा दौड़ गयी । बोला “और फिर अपनी बेईमानी से आपको परेशान करूँ ! छल करके आपके बैंक से रुपये चुराऊँ !...”

“मुझे शरमिन्दा न करो मधुकर !....”

“आप चले जाँय !...व्यर्थ मुझे दुख न दें...” मधुकर ने कहा—
“आपके पास रुपये हैं आपको बहुत से नौकर मिल जायेंगे...”

“मधुकर ! मेरे पास रुपया है...मगर आज मैं समझ रहा हूँ कि रुपयों से मनुष्य का हृदय नहीं खरीदा जा सकता, मनुष्य की ईमानदारी मोल नहीं ली जा सकती...”

सेठजी उठकर कमरे में व्यग्रतापूर्वक टहलने लगे ।

जेब से अपना पाइप निकालकर उन्होंने जलाया और धूरें का एक गहरा कश खींचा—

परन्तु धूरें की गर्मी उनके आँसुओं को न सुखा सकी, उनकी व्यथा का शमन न कर सकी ।

“रुपये से मैं नौकर खरीद सकता हूँ...”—सेठजी पुनः बोले—
“मगर मुझे तुम जैसा बेटा नहीं मिल सकता मधुकर !...”

“बेटा !...” व्यथापूर्ण हँसी हँसा मधुकर—“आप मेरा उपहास करने आये हैं सेठजी !...आप मुझे चोर, बेईमान, व्यभिचारी बना ही चुके थे, अब जलील करने आये हैं...”

“मधुकर !...”

टहलते-टहलते रुक गये सेठजी, मधुकर के सामने आ खड़े हुए ।

“मेरी दशा देखो मधुकर !...तुम्हारे बिना मैं अपनी बेटी खो दूँगा... वह रोते-रोते मर जायगी...”

“अपनी बेटी के आँसुओं का तो आपको इतना मोह है, परन्तु क्या कभी आपने मेरे आँसुओं की भी कीमत समझी !”

“समझ चुका हूँ मधुकर !...” सेठजी ने मधुकर का हाथ पकड़ लिया—“आज मैं अपने रुठे हुए बेटे को मनाने आया हूँ । आज मैं अपनी सुख-शान्ति वापस लेने आया हूँ....आज मैं तुमसे भीख माँगने आया हूँ...”

व्यथित सेठ बिहारीलाल ने मधुकर के पैरों पर, अपनी मूल्यवान नाइट कैप उतार कर रख दी ।

“मुझे भिन्ना दो मधुकर !...”

कहते हुए सेठ जी मधुकर का पैर पकड़कर बैठ गये ।

“आज तुमसे भिन्ना लेकर ही जाऊँगा....”

सहम कर मधुकर ने अपना पैर खींचना चाहा, मगर सेठजी ने न छोड़ा उसे । उनके नेत्रों से कई बूद आँसू टपककर मधुकर के पैरों पर गिर पड़े ।

मधुकर का हृदय भर आया ।

उसने सेठजी का कंधा पकड़कर ऊपर उठाया और सेठजी ने उठकर उसे अपने हृदय से दबा लिया ।

जैसे एक व्यथित बाप अपने रुठे हुए बेटे को अपने कलेजे से लगाकर अपना युग-युग का वात्सल्य प्रदर्शित करता है ।

“बाबूजी !...” मधुकर के मुख से पहिली बार ये शब्द निकले ।

“मधुकर !...”

“मैं कल से बैंक आकर अपना काम सम्हालूँगा !”—कहा मधुकर ने ।

‘बेटा !...मधुकर !...’

सेठजी दर्प से विह्वल हो उठे ।

इसके बाद बड़ी देर तक उन दोनों में बातें होती रहीं । सेठजी को मालूम हो गया कि वह नन्हा शिशु अमर मधुकर का बेटा नहीं, वरन् उसके दादी की धरोहर है ।

दूसरे दिन—

नित्य की भाँति कला बैंक के लिए खाना हुई । हृदय में चिन्ता का सागर हिलोरे ले रहा था । अब तक वह नहीं जानती थी कि मधुकर आज से बैंक आयेगा—सेठजी ने उससे कुछ भी नहीं बताया था । वे एकाएक उसको आश्चर्यचकित कर देना चाहते थे ।

कला ज्योंही अपने आफिस रूम में घुसी, कि चौंकर रुक गई, मधुकर को मैनेजिङ्ग डायरेक्टर की कुर्सी पर बैठा देखकर ।

वह दर्प-विह्वल हो मधुकर की ओर दौड़ पड़ी ।

“मधुकर !...”

परन्तु उसका मुख उतर गया ।

मधुकर ने उसके आने पर जरा भी प्रसन्नता नहीं दिखाई, सर उठाकर उसकी ओर देखा भी नहीं । ज्यों का त्यों सर झुकाये लिखता रहा ।

कला को व्यथा पहुँची, वह चुपचाप लौटकर अपनी कुर्सी पर जा बैठी । वह क्या जानती थी कि मधुकर के हृदय में इस समय कैसा रो र मचा हुआ है ।

कला की सहानुभूति और कंचन का प्रेम मिलकर मधुकर को बेकल बनाये हुए थे । समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या करे वह !

कई महीने बीत गये ।

इस बीच मधुकर नित्य बैंक आता, कला भी आती ।

परन्तु वे दोनों अधिकतर मौन रहते । कभी-कभी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ने पर एक दूसरे से काम की बातें कर लेते ।

जैसे उनकी निकटता में जमीन आसमान का अन्तर आ गया था और इस अन्तर ने उन दोनों के हृदयों में उत्कट पीड़ा की उद्भूति कर दी थी ।



जब से जीवन कंचन को लेकर बम्बई से आया है, तब से उसे चैन नहीं है । कंचन के पीछे वह परेशान है । हर समय डाक्टरों से घर भरा रहता है ।

कंचन कहती है—“क्यों डाक्टरों के पीछे रुपये फूँकते हो भैया !... कहीं मौत की भी दवा होती है !....”

जीवन उत्तर देता—“एक बार तो तू मरकर जीवित हुई है, अब तुझे यों ही मरने नहीं दूँगा । अपनी सारी दौलत फूँककर तेरी मौत से लड़ूँगा...”

कंचन ने सतत् चिन्ता तथा असहनीय व्यथा में भस्मसात होकर अपने अन्तराल में क्षय का रोग पाल लिया था ।

पहले तो केवल हलका-हलका बुखार रहता था, अब भीषण खाँसी भी आने लगी है और हृदय की चिन्ताग्नि, मुँह से खून के कतरे बनकर निकलने लगी है ।

डाक्टरों ने रोग असाध्य बताया है और कहा है कि हाड़मांस के पिंजड़े की वह बोलती हुई मैना कुछ ही महीनों की मेहमान है ।

जीवन अपनी बहन कंचन के लिए सब कुछ कर सकता है । वह उसे लेकर मंझरी, नैनीताल आदि स्थानों पर महीनों रहा है, परन्तु कंचन का दशा जरा भी नहीं सुधरी है ।

लाचार होकर अब वह घर लौट आया है और स्थानीय डाक्टरों के पीछे प्रति दिन सैकड़ों रुपये नष्ट कर रहा है ।

कंचन उसे रोकती है, क्योंकि वह अपनी जिन्दगी से उब उठी है । अब वह मरना चाहती है, किसी निर्मोही की याद अपने हृदय में दबाये ।

अर्द्धरात्रि का समय है । कंचन कमरे में अकेली बैठी हुई एक पत्र लिख रही है । शिथिलता से हाथ काँप रहे हैं, फिर भी वह पत्र लिखे ही जा रही है ।

यों—

आधी रात को भी नजरो के सामने नाचनेवाले निर्मोही !

आज तुम्हें दिल कड़ा करके पत्र लिखने बैठी हूँ । लिखती तो न, मगर अब मेरे जाने का समय आ गया है और डाक्टरों के मत से अब मैं केवल कुछ ही दिनों को मेहमान हूँ ।

इसीलिये बाध्य होकर तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूँ ।

क्षमा करना !

पिछली बार बम्बई में मैंने तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया, इस बात का मुझे दुःख है ।

परन्तु तुमने भी तो मेरे साथ विश्वासघात किया था और निर्मोही बनकर मुझे संसार सागर के बीच ढकेल दिया था ।

तो क्या तुम्हारी उस निष्ठुरता के लिए मेरे हृदय में प्रतिशोधाग्नि न प्रज्वलित होती ? घृणा न उत्पन्न होती ?

तुमने मुझे जैसा दुख दिया है, और तुम्हारे लिये मैंने जिस प्रकार दर-दर की ठोकरें खाई हैं, वह केवल मैं ही जानती हूँ या परमात्मा जानता है ।

और कोई नहीं जानता है ।

अब चलते-चलते तुम्हें भी बताये देती हूँ ।

इस पत्र के साथ ही मैं अपनी डायरी भेज रही हूँ, जिसमें मेरे दुखों की सारी कहानी लिखी है।

तुम उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना और पढ़कर यह पत्र और डायरी तुरन्त जला देना।

मैं नहीं चाहती कि मेरे कलंक की कहानी मेरे बाद सारी दुनिया जाने और मुझपर थूके।

हाँ ! तुम उत्सुक होगे, यह जानने के लिए, मुझे कौन-सी ऐसी बीमारी है, जिससे मैं मुखपूर्वक इस संसार से चल बसूँगी।

तो सुनो।

मुझे क्षय हो गया है। आठ महीने पहले, बम्बई से ही यह रोग पाल कर आयी हूँ।

भैया परेशान हैं—डाक्टर परेशान हैं—

परन्तु मैं खुश हूँ—बहुत खुश।

मैं जानती हूँ कि रोग की दवा हो सकती है, परन्तु मृत्यु की दवा कौन दे सकता है !

मैं अपने चारों ओर मृत्यु का विकराल मुख देख रही हूँ और फिर भी मेरे हृदय में तनिक भी भय नहीं है।

मैं मरना चाहती हूँ—मुझे इसी में सुख है।

तुम मेरी दशा का वर्णन पढ़कर व्याकुल हो उठोगे और यहाँ आने के लिए फौरन रवाना हो जाओगे—यह मैं जानती हूँ।

परन्तु मैं तुमको सावधान करती हूँ, तुम यहाँ आने की गलती मत करना, वरना मैं अपना गला अपने ही हाथों टीप लूँगी।

मुझे तुमसे घृणा है—तुम्हारी सुरत से घृणा है।

मैं तुम्हें, तुम्हारी सुरत, देखना नहीं चाहती—

चाहती हूँ तुम्हारी याद में तड़प-तड़प कर अपनी जान दे दूँ—

चाहती हूँ कि मरते समय तुम्हारा ही नाम मेरी जवान पर रहे।

एक नारी के हृदय में प्रेम और घृणा का साथ-साथ संघर्ष तुम्हारे लिए नवीन अनुभव की वस्तु प्रतीत होगी—

परन्तु नारी हृदय की महानता, तुम जैसे निर्मोही पुरुष क्या जान सकेंगे ?

अब मैं पत्र समाप्त करती हूँ, क्योंकि डाक्टर ने मानसिक परिश्रम करने को मना किया है और अभी मुझे अपनी डायरी भी लिखकर पूरी करनी है, जिसे एक मुद्दत से लिखना छोड़ दिया है।

बस !

अन्तिम विदा !

तुम्हारी याद में तड़पती हुई—

—कंचनमाला !

कंचन ने पत्र मोड़कर लिफाफे में भरा और मेज पर एक ओर रख दिया।

इसके बाद उसने दराज में से एक छोटी-सी किताब निकाली।

यह उसकी डायरी थी, जिसपर अपने सुख-दुख की याद लिखा करती थी।

डायरी खोलकर, वह एक सादे पन्ने पर लिखने लगी—

पिछले पृष्ठों में मैं यह लिख चुकी हूँ कि छलिया मधुकर ने उस भीषण काली रात में मुझे अपनी बनाकर, मेरे चरित्रकाश में सदैव के लिए कलंक कालिमा पोत दी और मेरे अन्तराल में एक नन्हें शिशु का बीजारोपण कर दिया और तब वह मुझे तड़पती बिलखती छोड़कर जाने कहाँ चला गया कि कई पत्र लिखने पर भी कुछ उत्तर न आया !

मेरी परेशानी बढ़ने लगी, ज्यों-ज्यों मेरा पेट बढ़ने लगा।

अन्त में मैंने भैया का घर छोड़ देने की ठानी और निश्चय कर लिया कि किसी तालाब में कूदकर प्राण दे दूँगी, मगर भैया के मुखपर कलंक लगने न दूँगी।

और एक दिन, भैया कारखाने चले गये, तो मैंने एक छोटे से

सूटकेस में कुछ आवश्यक सामान रखा और नौकरी की नज़र बचाकर बाहर निकल गई ।

मेरे पैर अपने आप स्टेशन की ओर उठ गये ।

स्टेशन पहुँच कर, देखा तो टिकट बँट रहा था ।

अब तक मैंने यह निश्चय न किया था कि मैं कहाँ जाऊँगी, क्या करूँगी !

परन्तु टिकट घर की खिड़की के पास पहुँचते ही मेरे मुख से निकल पड़ा—“कानपुर”—

और टिकट बाबू ने कानपुर का एक टिकट मेरे हाथों पर रख दिया ।

टिकट लेकर मैं प्लैटफार्म पर आई । गाड़ी आने में अभी देर थी, अतः मैं प्लैटफार्म पर टहलतो-टहलती अपनी बेचैनी दूर करने लगी ।

मैंने सोचा—

कानपुर चलूँगी । उस निर्मोही का तो पता जानती ही हूँ । उसके पास चलकर उसका पैर पकड़कर कहूँगी—“निर्मोही ! मुझे बरबाद करना था, तो मेरा गर्भ आबाद क्यों किया !...”

गाड़ी आई और सवार हो गई ।

मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं अपने शहर से हमेशा के लिए दूर जा रही हूँ ।

गाड़ी चल पड़ी और लगभग ५ घंटे बाद मैं कानपुर पहुँच गई ।

मैं बहुत थक गई थी, क्योंकि अब मेरी दशा ऐसी नहीं थी कि मैं कष्ट सहकर यात्रा कर सकूँ ।

मानसिक चिन्ताओं ने मुझे और भी जर्जर बना डाला था ।

एक एक्का करके जब मैं मधुकर के महल्ले में पहुँची, तो शाम हो चुकी थी ।

बड़ी देर के बाद भटकते-भटकते मुझे मधुकर के मकान का पता मिला ।

परन्तु वहाँ कोई न था ।

दरवाजे में ताला बन्द था ।

मैं हताश हो सीढ़ी पर गिर पड़ी । समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ !

इस अनजान जगह में मुझे भाग्यहीना को कौन आश्रय देगा !

मुझे अपनी दशा पर रोना आ गया । आँसू टप टप चू पड़े । इतने में ही बगल का दरवाजा खुला एक बुढ़िया मेरे पास आ खड़ी हुई ।

मुझे देखकर बुढ़िया को दया आ गई ।

पूछा उसने—“कौन हो तुम ! क्या चाहती हो बेटी !....”

“मैं एक दुखियारी हूँ माँ !”—मैं बोली—“आश्रय चाहती हूँ...”

“आ जाओ...” बुढ़िया ने कहा—“भीतर आ जाओ बेटी ! इसे अपना ही घर समझो । मेरा दरवाजा बेकसों के लिए हमेशा खुला है....”

बुढ़िया ने प्रेमपूर्वक मेरा हाथ पकड़कर उठाया और अन्दर लाकर दीपक की रोशनी में मुझे ध्यानपूर्वक देखा ।

“तुम गर्भवती हो !...” बुढ़िया ने पूछा ।

“हाँ...”

मैं मारे लज्जा के जमीन में गड़ गई ।

बुढ़िया ने मेरा घरबार नाम आदि जानने के लिए बहुत इठ किया, परन्तु मैंने उसे कुछ न बताया ।

केवल इतना कहा—“माँ ! मैं अभागिन हूँ ! भाग्य के फेर में पड़कर इस दशा को प्राप्त हुई हूँ । एक छलिया ने मुझे छलकर यह निशानी दी है और इसलिए मैं घर से भाग आई हूँ....”

“कोई बात नहीं बेटी !” बुढ़िया बोली—“तुमको आजीवन अपने पास रखूंगी । तेरा बच्चा होगा, तो उसे पाल-पोसकर बड़ा करूँगी और मेरा बुढ़ापा कट जायगा...”

“तुम्हारे और कोई नहीं है माँ !....” मैंने पूछा ।

“नहीं बेटी ! मेरा अपना संसार में कोई नहीं है !”—

बुढ़िया कहने लगी—“अकेली बच गई हूँ संसार में । एक दुखियारी और उसके लड़के को अपने पास रखा था और उस लड़के को

पढ़ाया-लिखाया भी था, परन्तु अपनी माँ के मर जाने पर वह लड़का मेरा मोह भूल गया...मधुकर नाम था उसका ।”

“मधुकर !...” एकाएक मैं चौंक पड़ी ।

परन्तु मेरा चौंकना बुढ़िया देख न सकी ।

वह बोली—“हाँ ! मधुकर नाम था उसका । जिस सीढ़ी पर तुम बाहर बैठी थी, उसी कोठरी में वह रहता था....”

“अब कहाँ हैं वे माँ...”

“उसकी कुछ मत पूछो बेटी !...यों तो लड़का अच्छा था, मुझे बहुत मानता था, हर समय दादी-दादी करता रहता था परन्तु अपनी माँ के मरने पर उसे बहुत सदमा पहुँचा...आजकल वह बम्बई में है । मेरी मुझ भूल गया है । जब से वह वहाँ गया है, एक भी पत्र न भेजा...”

“वे बम्बई में कहाँ रहते हैं माँ !—”

“कुछ पता नहीं—मैं क्या जानूँ, कहाँ रहता है !—निर्मोही कहीं का !...”

मैंने देखा, मधुकर की याद आ जाने से बुढ़िया की आँखें भर आई थीं ।

मैं बुढ़िया के घर रहने लगी । बुढ़िया ने मुझे बहुत आराम से रक्खा । मेरे सुख का वह बहुत खयाल रखती थी । मुझे कोई भी काम न करने देती थी ।

कहती थी—“बेटी ! तेरे भारी दिन आ गये हैं । थोड़े दिन आराम कर । जब लल्ला बाहर आ जायगा, तो खूब उछल-उछल कर काम करना...”

और कुछ दिन बाद—

मेरे पेट में भयंकर प्रसव पीड़ा होने लगी । मेरा पाप बाहर आने के लिये छूटपटा रहा था ।

उसी रात—

चाँदनी की चमक और ओस से भीगी हुई रात में, एक नवजात शिशु ने इस संसार का मुख देखा ।

मैं चीख उठी—अपने पाप के इस भीषण और सुन्दर परिणाम को देखकर ।

बुढ़िया हर्ष से चीत्कार कर उठी । उसे जैसे नवजात बच्चे के रूप में उसके बुढ़ापे का सहारा मिल गया था ।

ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते गये, त्यों-त्यों मेरी दशा बिगड़ती गई और मेरे बच्चे का मुख धवल चन्द्र की तरह खिलने लगा ।

जब मैं उसके प्रोज्वल मुख की ओर देखती, तो मुझे अपने पाप की याद आ जाती ।

मुझे वह रात याद आती, जिस रात जवानी की आँधी मुझे उड़ा ले गई थी ।

मैं तड़पकर रह जाती जो स्मृति मैं अपने मस्तिष्क से हटाना चाहती थी, वही बार-बार मेरे मानस-पटल पर अंकित हो उठती थी ।

मैं सूखती जा रही थी, दिन प्रतिदिन ।

इधर मुझे मधुकर की याद सताने लगी थी तीव्र रूप से ।

मैं एक बार बम्बई चलकर उस निर्मोही की खोज करना चाहती थी । हृदय में मधुकर को देखने के लिये उत्कट लालसा बलवती हो उठी थी ।

कुछ दिनों से मेरे हृदय में एक भयंकर परिवर्तन होने लगा था—वह था बच्चे के प्रति मेरे हृदय में तीव्र घृणा का भाव ।

स्वप्न में भी कोई ख्याल नहीं कर सकेगा कि एक माता अपने बच्चे से घृणा कर सकती है ।

परन्तु वह मेरा पाप-पुत्र था । मेरे रास्ते का काँटा था । उसे साथ रखने पर मैं समाज में मुँह दिखाने लायक भी नहीं रह सकती थी । समाज मुझे कुलटा, वेश्या कहेगा ।

और सोचते-सोचते मेरा सारा बदन सिहर उठता ।

मैं अपने भैया के घर से भाग आई थी, परन्तु उस घर में वापस जाने को मेरा दिल कचोट उठता था ।

परन्तु उस शिशु के रहते यह असम्भव था ।

वह गोरा-गोरा सा सुन्दर बच्चा मेरे रास्ते का रोड़ा था—

न तो मैं मधुकर की खोज में बम्बई जा सकती थी,

न तो स्वतन्त्र रूप से कोई जीविका ही खोज सकती थी,

न तो समाज में सर ऊँचा उठाकर चल ही सकती थी—और—

न तो अपने भैया के घर वापस ही जा सकती थी ।

हृदय में तीव्र प्रेरणा उत्पन्न हुई कि बच्चे को बुढ़िया के पास छोड़कर कहीं चल दूँ । ममतामयी बुढ़िया बच्चे का लालन-पालन करेगी और उसका बुढ़ापा कट जायेगा ।

मेरी कलंक-कालिमा भी मिट जायगी ।

कितने ही दिन और कितनी ही रातें मैंने सोचते-सोचते काट दीं ।

मेरे हृदय में सदैव एक ज्वाला-सी धधकती रहती थी और मैं न तो ठीक से सो पाती थी और न ठीक से खा पी सकती थी ।

अन्त में एक दिन मेरे हृदय की सारी निर्बलता दृढ़ निश्चय में परिवर्तित हो उठी ।

मैं छोड़ दूँगी—पुत्र की ममता छोड़कर अपने को बन्धन से अलग कर लूँगी ।

नारी हृदय ही तो ?

कभी कठोर—कभी कोमल !

कभी पत्थर—कभी पानी !

एक दिन मैंने बुढ़िया से हँसकर कहा—“माँ ! अगर मैं चली जाऊँ, तो क्या तुम बच्चे को सम्हाल लोगी ?”

“जा रे जा !...” बुढ़िया बोली—“जहाँ तेरा जो चाहे, चली जा । मैं अपने लल्ला को खिला-पिला लूँगी—”

उसी रात, चार महीने के बच्चे को सोता हुआ छोड़कर उसका अन्तिम चुम्बन लेकर, मैं स्टेशन भागी !

स्टेशन पर आकर मैंने श्रम की साँस ली, जैसे बहुत बड़े बोझ से छुटकारा मिला हो मुझे ।

उसी दिन मैं बम्बई के लिये रवाना हो गई ।

यद्यपि मेरे हृदय में अब मधुकर के प्रति तीव्र घृणा तथा विद्वेष की भावना थी, फिर भी न जाने कौन अदृश्य शक्ति मुझे उस ओर खींच ले चली ।

X X X X

कंचन ने यहीं तक लिखा था कि आ पहुँचा जीवन ।

“कंचन !....” बोला जीवन—“तुझे कितना समझाया कि अपना लिखना-पढ़ना कम कर दे, परन्तु तू मानती ही नहीं । आधी रात होने को आई, और अब भी मेज पर बैठी हुई तू लिख रही है !”

कंचन ने डायरी मेज के दराज में छिपा दी ।

बोली—“अब चलकर सो रहती हूँ भैया !”

“तू तो अपनी जान देने पर उतारू है...”

जीवन ने कंचन का हाथ पकड़कर उठाया और पलंग पर सुलाकर ऊपर से लिहाफ डाल दिया ।

और तब बिजली का स्विच दबाकर अन्धकार करने के पश्चात् वह उस कमरे से बाहर हो रहा ।



मधुकर की चुप्पी से कला घबड़ा उठी थी। वह मधुकर से बातें करना चाहती थी। उसके मादक स्वरों को सुनते-सुनते मदहोश हो जाना चाहती थी। उसके सुडौल शरीर को अपने अंग-अंग में समा लेना चाहती थी।

परन्तु वह मधुकर सदैव गम्भीर रहता था। इन आठ महीनों में उसने कला से एक भी प्रेमपूर्ण वार्तालाप न किया था। उसके उल्लसित अधरों पर एक भी हलाहल भरा चुम्बन अंकित न किया था।

बेचैन थी कला, मधुकर के लिए।

व्यथित था मधुकर, कंचन के लिए।

और एकदिन कला ने दौड़कर मधुकर को अपनी कोमल बांहों में भर लिया। सिसकने लगी—

“क्यों रुठ गये हो मुझ से मधू !”

मधुकर एक क्षण तक भूला-भूला खड़ा था। कला के उन्नत वक्ष का मादक आलिगन अपने सीने पर लेते हुए—

फिर धीरे से, प्रेमपूर्वक, कला को अपने से अलग कर दिया।

“मिस कला !...” वह बोला।

जीवन में यह पहला अवसर था, जब कला ने उसके मुँह से अपने लिये ‘मिस’ का प्रयोग होते सुना था।

उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मधुकर अब उससे बहुत दूर जा पड़ा हो।

“मधू....मेरे मधू !....”

“मिस कला !....” मधुकर बोला—“अपने हृदय को सम्हालो ! वेगवती सरिता में अपने को बहने मत दो...”

“क्या कह रहे हो मधुकर तुम !....”

सिसक कर पूछा कला ने।

“ठीक कह रहा हूँ मैं”—मधुकर ने कहा—“यह युवावस्था वेग-

वती सरिता है। हृदय की अगम प्यास, मादक अवयव की उच्छ्व-
लता आँखों का हलाहल, युवावस्था में वासना की सृष्टि कर देते हैं
और मनुष्य अपनी तुष्टि को ही प्रेम, समझ लेता है...”

“.....”

“इस बात का मुझे अनुभव है कला ! इसीलिए मैं तुम्हें इस
विनाशकारी पथ पर धसीटना नहीं चाहता...”

“मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ मधु !.... अपनी तुष्टि नहीं
चाहती...”

“तुम मुझसे विवाह करना चाहती हो !...मगर किसलिए !...
अपने यौवन की परितुष्टि के लिए ही तो !....”

“नहीं मधु ! नहीं !”—बिजखकर कला बोली—“तुम मुझे नहीं
समझ पाये हो ।...मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और चाहती हूँ कि तुम्हें अपने
हृदय मन्दिर में रखकर तुम्हारी उपासना करूँ....मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि
जीवन भर तक कभी तुमसे तुष्टि को चाहना न करूँगी—कभी तुम्हारे
यौवन पर मदहोशी की छाया न पड़ने दूँगी...”

“तुम मेरी उपासना कर सकती हो, परन्तु मुझे पाने का खयाल
छोड़ दो कला !...” निराकार ब्रह्म की उपासना ठीक होती है साकार
ब्रह्म की उपासना हृदय में कामना की उद्भूति करती है...”

“तुम आज कैसी बातें कर रहे हो मधु !...”

“कला ! आज तक एक भेद छिपा रखा था....”

“क्या !...”

“मैं विवाहित हूँ....”

“या भगवान् !...” कला ने अपना सर पकड़ लिया—“तुम
विवाहित हो !...”

“कला मेरी शादी हो चुकी है—”

“किससे ?” कला ने पूछा ।

“जीवन को बहन कंचन से !”—मधुकर बोला—“यद्यपि दुनिया

की नजरों में हम अब तक अविवाहित ही हैं, परन्तु हमने एक दूसरे को बहुत पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया था....”

“तुमने कंचन से सामाजिक रीति में शादी नहीं किया ?—”

“नहीं, उसका अवसर ही नहीं मिला ?”—मधुकर ने कहा—“मैं तुम्हारे साथ बम्बई चला आया और वह नादान बालिका मेरे ही शोक में घर से भाग आई और सबने उसे मृत समझ लिया....”

“छुलिया !...” रो पड़ी कला—“जब तुम एक बालिका को छुन चुके थे, तो फिर मुझे क्यों प्रेम की डोर में बाँधा । मुझे क्यों सब्जबाग दिखाया ? मेरी मदहोश आँखों में अपने नयनों के लाल-लाल डोरे क्यों उलझाये ?...”

“मुझे क्षमा करो कला !....कंचन को मृत समझकर मैंने तुमसे अपना संसार बनाने का स्वप्न देखा था—परन्तु अब वह स्वप्न विलीन हो चुका है—कंचन जीवित है अभी—और उसके रहते मेरा हृदय और किसी और नहीं जा सकता ।”

“निर्मोही !...मेरे दिल पर बिजली गिराकर मेरे सीने को अपनी छाती की घड़कन सुनाकर मेरे प्यासे अघरों का पराग लूटकर मेरी मदहोश जवानी में अव्यक्त बेचैनी और तड़पन भरकर मेरे छलकते हृदय में एक अगम लालसा उसकाकर...अब तुम बातें बनाते हो...”

“कला ! मुझे विवश जानकर क्षमा करो !”—बोला मधुकर—“तुमने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह इस संसार में कोई किसी के साथ नहीं कर सकता । तुम्हारी सहानुभूति के बल पर ही मैंने जीवन में उत्थान की मीढ़ी चढ़ी है—तुम्हारे प्रेम के बल पर ही मैंने हँसते-हँसते दुखों को भेला है—तुम्हारे उपकार मेरे रग-रग में भरे हैं कला ! मैं भूल नहीं सकता उन उपकारों को....”

“मेरे उपकारों का बदला तुम मेरा सुख-चैन छीनकर दे रहे हो—मेरी जान लेकर तुम मेरी सहानुभूति का मूल्य चुकाना चाहते हो !”

“मुझसे प्रत्युपकार की आशा न रखो कला !...मैं बहुत निर्धन हूँ
तुम्हें बदला नहीं चुका सकता...”

“मैं प्रत्युपकार नहीं चाहती— मैं केवल तुम्हें चाहती हूँ...”

“मैं विवश हूँ कला !...”

“उफ़ ! निर्दयी !....”

रोती हुई कला, अपनी कुर्सी पर जाकर धम्म से गिर पड़ी ।

मधुकर अपनी कुर्सी पर बैठा रहा । कला के पास जाकर उसे सांत्वना
देने का प्रयत्न नहीं किया उसने ।

वह सान्त्वना दे ही क्या सकता था !

उसी समय चपरासी ने उस दिन की डाक मधुकर के सामने ला रखी ।

एक छोटा-सा पार्सल था—

उसपर की लिखावट देखते ही मधुकर चौंक पड़ा । कंचन के अक्षर
चमक रहे थे—

परन्तु उनमें विकृति आ गई थी, जैसे लिखते समय कंचन के हाथ
शिथिलता से अथवा आवेग से काँपते रहे हों ।

मधुकर का कलेजा न जाने क्यों घड़कने लगा ।

उसने धीरे से पार्सल खोल डाला ।

एक पत्र और एक छोटी-सी डायरी मिली ।

मधुकर ने शीघ्रतापूर्वक पढ़ डाला ।

आँखों के आगे अँधेरा छा गया । कंचन के क्षयग्रस्त होने का
समाचार उसके लिये अत्यन्त दुःखद था ।

वह कुर्सी पर ठीक से बैठ गया और कंचन की वह डायरी शीघ्रता-
पूर्वक पढ़ने लगा—

डायरी यद्यपि विशेष बड़ी न थी, फिर भी मधुकर को लगभग एक
घण्टा लगा, उसे पढ़ने में !

डायरी खतम कर उसने मेज पर रख दी ।

अपने ही हाथों, अपने गाल पर जोरों से एक तमाचा मारा उसने और तब आँखों से आँसू बहाता हुआ बैठा रहा कुर्सी पर ।

उफ़ ! उसने भोलो कंचन के साथ कैसा गहरा विश्वासघात किया था—

उसे एक बच्चे की माँ बनाकर फिर उसकी खोज-खबर ही न ली थी ।

परन्तु इसमें मधुकर का क्या अपराध है ?

यदि उसे यह मालूम होता, तो वह सब कुछ त्याग कर कंचन का हाथ पकड़ लेता और उसे संसार सागर में अकेला न रहने देता ।

परन्तु मधुकर को यह सब बात मालूम न था ।

नियति तो कंचन को ठोकरें खिलाने पर तुली हुई थी ।

और वही कंचन, किस्मत के थपेड़े खाने के पश्चात्, अब मृत्यु-द्वार के निकट जा खड़ी हुई थी ।

मधुकर का हृदय हाहाकार कर उठा ।

वह चली जायगी—वह अपना जान दे देगी—

तो कैसे रह सकेंगा मधुकर ?

मगर समय का क्रूर हाथ सब कुछ भुला देता है तो एक दिन कंचन की मृत्यु के पश्चात् वह भी उसे भूल जायेगा—अपने पिछले जीवन को स्वप्न का एक अंग समझ लेगा—

और आजोवन अविवाहित रहकर, अमर के सन्तोने मुखड़े में, कंचन की भूली स्मृति खोजेगा ।

अमर !

अमर ही तो उसका और कंचन का पुत्र है !

जिसे वह अब तक अपने दादी की धरोहर समझ रहा था, वह स्वयं उसका पुत्र निकला ।

विधि की विडम्बना !

“मेरा बच्चा !...मेरा बेटा !...कंचन की निशानी !... अमर !...”

अपने आप ही बड़बड़ा उठा मधुकर ।

परन्तु दूसरे ही क्षण उसका उल्लास विलीन हो गया ।

कंचन चली जायगी—

उसे तड़पता हुआ छोड़कर—

वह मधुकर से घृणा करती है और लिखा है उसने कि यदि वह उसके पास आयेगा, तो वह अपना गला टीप लेगी ।

मुरझाई हुई कला, पतझड़ के पहले ही, डाल से टूट गिरेगी ।

मधुकर बेचैन हो उठा ।

कैसे देखे वह कंचन को—

मरती हुई कंचन की मूर्ति अन्तिम बार वह कैसे देखे ! वह जायगा—
चुपचाप जायगा और अपना गला टीपने के लिये बढ़े हुए कंचन के हाथों को कसकर पकड़ लेगा—

कहेगा—“मेरी रानी ! मरने के पहले, मुझे क्षमा करती जाओ...
देवी ! संसार से विदा होने के पहले, मेरी आँखों से आँसुओं के पुष्प स्वीकार करती जाओ...”

उठकर खड़ा हो गया मधुकर ।

उसी समय मेज पर रखे हुए टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी ।

मधुकर ने रिसीवर उठाकर कान में लगा लिया—

घबड़ाई हुई घाय की आवाज उसके कानों में पड़ी—

“गजब हो रहा है बाबू !...मकान में आग लग गई है, ऐसी आग कि बुझाये नहीं बुझती....”

“आग ?” तड़पकर बोला मधुकर—“कैसे लग गई आग ?”

“जाने कैसे सरकार ?”—घाय कह रही थी—“सारा घर लकड़ी की तरह जल रहा है....”

“अमर कहाँ है—अमर !”

रोकर घाय ने उत्तर दिया—“उसी मकान के भीतर है बाबू...आग

ने चारो ओर से घेर लिया है—किसी की हिम्मत मकान में घुसने की नहीं हो रही है...”

“अमर जलते हुए मकान में है ?”—मधुकर हाथ कर उठा—
“मेरा बच्चा आग की लपट में पड़ा है....”

घबड़ाया हुआ मधुकर बाहर दौड़ा ।

बैंक के निचले हिस्से में आकर, गैरेज से मिस्टर टामसन की मोटर सायकिल निकाली—

और बेतहासा दौड़ चली मोटर सायकिल दादर की ओर ।

मधुकर पर जैसे हैरानों का भूत सवार हो गया था । उसे तनिक भी चिन्ता न थी कि कोई उसकी मोटर सायकिल के नीचे आ जावेगा ।

साठ मील से भी तेज जा रहा था वह, अपने दायें-बायें का खयाल छोड़कर ।

अमर के जलते हुए मकान के भीतर होने का समाचार सुनकर उसने अपनी जान हथेली पर रखकर मोटर भगा दी थी ।

परेल पहुँचते-पहुँचते उसकी सायकिल एक पेड़ से टकरा गयी । पेट्रोल में आग लग गई और मधुकर सीमेंट की सड़क पर दूर भटक दिया गया ।

सर फूट गया, खून की धारा बह चली ।

एक क्षण बेहोशी के बाद मधुकर पुनः उठ खड़ा हुआ । पास से जाती हुई एक टैक्सी पर उछलकर चढ़ बैठा ।

टैक्सी उसे लिए दिए भाग चली । मधुकर ने जलते हुए पेट्रोल के बीच पड़ी मोटर सायकिल वहीं छोड़ दी ।

दूर ही से उसने अपने मकान के चारों ओर अग्नि का भयंकर ताण्डव देखा ।

हो-हो कर जल रही थी आग ।

मधुकर को ऐसा लगा, जैसे उसकी हड्डियाँ जल रही हों ।

टैक्सी रुकी तो, वह दौड़ पड़ा ।

लोगों की भीड़ एकत्रित थी। फायर ब्रिगेड भी आ गया था।
परन्तु आग थी, कि पानी पड़ने पर और भी भभक उठती थी।

“अमर !...मेरा बेटा अमर !...”

दूर से चिल्लाया मधुकर।

घाय दौड़कर उसके पैरों से लिपट गई।

रोती हुई बोली—“अमर अभी तक मकान में ही है बाबू !...उसे
बचा लो... उस मासूम बच्चे की जान बचा लो सरकार !”....

मधुकर पागल-सा हो उठा था।

उसकी कुछ समझ में ही नहीं आता था कि वह क्या करे !

वह विचित्र-सा चिल्लाता हुआ, जलते हुए मकान के दरवाजे की
ओर बढ़ा !

कुछ लोगों ने आगे बढ़कर उसे मजबूती के साथ पकड़ लिया।

“कहाँ जाते हो !...अपनी जान देने...”

“मुझे मत रोको....मत रोको मुझे...उस मकान में मेरा कलेजा
जल रहा है...मैं अपनी जान दे दूँगा, मगर उसे जलने न दूँगा....”

अपने को छुड़ाकर मधुकर जलते हुए दरवाजे की राह मौत के मुँह
में घुस गया।

आग चिल्ला-चिल्लाकर जल रही थी। काठ के किवाड़, धरन जल
जलकर टूट रहे थे।

मधुकर सीढ़ी की राह ऊपर की ओर दौड़ा। जिस कमरे में अमर
सोया था, देखा—वह कमरा जैसे आग का गोला हो रहा है।

मधुकर को अपनी जान की परवाह न थी। उस समय वह केवल
अमर को जीवित देखना चाहता था।

वह घुस पड़ा कमरे में। देखा, उस नन्हें शिशु सहित चारपाई तीव्र
वेग से जल रही है।

मांस चलने की चिरायन्ध गन्ध कमरे की धूमराशि में फैली हुई थी।

जहाँ कुछ क्षण पहले एक कोमल शिशु का जिवित शरीर सोया था, वहाँ अब कुछ न था—

काले कोयल की तरह एक बच्चे का ढाँचा मात्र, जलती हुई खाट के बीच पड़ा था ।

कंचन और मधुकर के गुप्त पाप का मधुर परिणाम इस समय कोयले में परिवर्तित हो चुका था ।

मधुकर हाथ कर उठा ।

तोत्र वेग से झपट कर मधुकर ने, जलती हुई खाट पर से, अमर का झुलसा हुआ प्राणविहीन शरीर उठा लिया और बाहर की ओर भागा ।

अब तक मधुकर के कपड़ों में भी आग लग गई थी ।

आँखें धूँएँ के गुबार में बेकार हो गई थीं ।

फिर भी सिढ़ी की ओर लपका ।

परन्तु सीढ़ी का रास्ता तो पूरा रुक चुका था । आग की जिह्वा उधर बढ़ने भी नहीं देती थीं ।

अब मधुकर को आग की लपटों ने चारों ओर से घेर लिया था ।

रास्ता केवल एक था—

वह था, पाइप पकड़कर नीचे उतरना ।

कार्य अत्यन्त भयंकर था—परन्तु मधुकर हताश न हुआ ।

“वह है !....वह ! जलती हुई आग में खड़ा....”

नीचे से बहुत लोग चिल्ला उठे ।

शायद खुली हुई खिड़की की राह लोगों ने उसे देख लिया था ।

मधुकर जीने की ओर बढ़ा—

परन्तु एक जलती हुई धरन उसके ऊपर आ गिरी और वह हाथ कर वहाँ गिर पड़ा । बेहोश हो गया ।

धरन की अग्नि ने अपनी जिह्वा निकालकर उसे चारों ओर से घेर लिया ।

उसी समय फायर ब्रिगेड द्वारा परिचालित पानी की एक मोटी धार खिड़की द्वारा आकर, उस जलती हुई धरन पर गिरने लगी ।

धीरे-धीरे मधुकर के चारों ओर की आग बुझ गई और पानी की शीतलता पाकर उसकी चेतना शक्ति कुछ वापस लौटी ।

वह उठ खड़ा हुआ, अमर की लाश कसकर कमर में बाँध ली और जीने पर आकर, पाइप पकड़कर लटक गया ।

उसके हाथ काँप रहे थे—आँखें बेकार-सी हो रही थी—मस्तिष्क चक्कर खा रहा था—

फिर भी वह पाइप पकड़ कर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा !

“शाबास ! शाबास बहादुर !...”

नीचे से लोग चिल्ला रहे थे ।

परन्तु मधुकर का मस्तिष्क पुनः चेतनाहीन होता जा रहा था ।

हाथ काँप रहे थे । लग रहा था कि पाइप अब हाथ से छूटा...

छूटा ।

और छूट ही गया पाइप उसके काँपते हाथों से ।

तीव्र वेग से मधुकर, बीस फुट नीचे आ गिरा । सर फट गया ।

लोग बेहोश और लहूखुदान मधुकर के पास दौड़ आये ।

परन्तु क्या कर सकते थे वे सब ?

मधुकर तो अपनी जान पर खेल गया था ।

इतने में ही घबराई हुई कला दौड़ी आई । पीछे-पीछे रायसाहब सेठ बिहारीलाल भी आये ।

कला मधुकर के मृतप्राय शरीर पर गिरकर हाय-हाय रौने लगी ।

लोगों ने देखा—भीम जैसे रायसाहब सेठ बिहारीलाल की आँखों से सावन-भादों उमड़ पड़ा है ।

उन्होंने कला का हाथ पकड़कर मधुकर के शरीर पर से उठाया ।

मधुकर का लाल-लाल रक्त, कला की श्वेत साड़ी में लगकर हँस रहा था, जैसे उसकी अगम-वेदना का उपहास कर रहा हो ।

मधुकर का चेतनाहीन शरीर तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया ।
 सेठ बिहारीलाल की घन से भरी थैलियाँ, डाक्टरों के सामने
 खुल पड़ीं ।

इन्जेक्शन पर इन्जेक्शन दिये जाने लगे ।

परन्तु मधुकर को मौत के पंजों से कोई छीन न सका ।

मधुकर का शरीर चार दिनों तक जीवन और मरण के बीच
 झूलता रहा ।

इस बीच कभी-कभी उसके गले से घरघराहट भरी आवाज निकल
 जाती थी । उसके मुख से कंचन, जीवन, कला और दादी का नाम
 निकला करते थे । बेहोशा में वह इन सबको याद किया करता था ।

कला का संसार लुट रहा था—उसकी आँखों में नींद नहीं थी,
 आँसू थे ।

वह दिन रात मधुकर का सर अपनी गोद में लेकर बैठी रहा
 करती थी ।

उसने जीवन और दादी को भी एक्सप्रेस तार दे दिया था ।

पाँचवें दिन—

जलता हुआ दीपक बुझने के करीब आ गया और उसकी शिला
 कुछ तेज होने लगी ।

डाक्टर ने एक और इन्जेक्शन दिया—

और तब कराहकर मधुकर ने अपनी आँखें खोल दीं ।

उसके मुख से घरघराहट भरी आवाज निकली ।

कला ने उसके मुख से अपने कान लगा दिये, तो उसे क्षीण स्वर में
 सुनाई पड़ा—“मैं कहाँ हूँ ! कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है...”

कला बोली—“तुम अस्पताल में हो मधू !—”

“तुम....कौन...हो !”

“मैं हूँ कला !”

“कला !...और !....क्या सेठजी भी आये हैं !”

“जरा उन्हें बुलाओ....मैं मरते समय उनसे कुछ कहना चाहता हूँ...”

कला ने सेठजी को पास बुलाया ।

“मधुकर !...बेटा !...” कहकर रो पड़े सेठजी ।

“रोते हैं आप बाबूजी !”...मधुकर शिथिल आवाज में अटक-अटक कर कह रहा था —“एक दिन आपने कहा था कि ईमानदार आदमी, अपमान सहन करने के बदले, मृत्यु का आलिङ्गन करते हैं... आज मैंने भी वही कर दिखाया बाबूजी !...”

“बेटा !...” सेठजी अत्यन्त विकल हो उठे ।

उसी समय दौड़ते हुए जीवन, कंचन और दादी ने वहाँ प्रवेश किया ।

जीवन हाथ मलता और आँसू बहाता खड़ा रह गया

कंचन के नेत्र शुष्क हो गये थे । तीव्र वेदनाग्नि ने उसके आँसू सुखा डाले थे ।

दादी दौड़कर मधुकर से लिपट गई ।

“कौन !...” सिहर उठा मधुकर का विवश शरीर

“मैं मधू !....तुम्हारी दादी !...”

तीव्र स्वर से रुदन करती हुई दादी ने कहा ।

“दादी !...” मधुकर शिथिल स्वर में बोला—“मैं तुम्हारे धरोहर की रक्षा न कर सका, मुझे क्षमा करना...क्या कंचन भी आई है !....”

कंचन आगे बढ़ आई । प्रेमपूर्वक मधुकर का सर सहलाने लगी । सुखे हुए आँसू न जाने कहाँ से उमड़ पड़े ।

“मुझे क्षमा कर दो कंचन !...”

“मेरे मधू !....ऐसा न कहो...”

“कंचन !...तुमने मुझे निर्मोही कहा था, और आज मैं सचमुच निर्मोही बनकर तुम्हें छोड़े जा रहा हूँ...मेरी याद आयेगी न !...”

कंचन पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।

जीवन आगे आया ।

पुकारा उसने—“मधुकर !...”

“जीवन !...तुमने एक दिन मुझे तमाचा मारा था और आज मैं आखिरी बार तुम्हारे मुँह पर तमाचा मारकर दुनियाँ से जा रहा हूँ...”

कुछ देर तक चुप रहा मधुकर ।

साँस में अधिक घरघराहट आ गई ।

कला ने अपनी गोंद में पड़े हुये मधुकर के सर को जोरों से दबा दिया ।

रोकर बोली—“मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी मधुकर !...”

“जाना ही पड़ेगा !...तुमने मुझे आज तक बहुत कुछ दिया—क्या मरते समय मुझे एक भीख दे सकोगी !...”

“भीख न कहो मधू !...आशा दो...तुम्हारी आशा कभी टाल नहीं सकूँगी मैं ।”—कला बोली ।

“यह मेरा दोस्त जीवन, अब तक तुम्हारे नाम की माला जपता आ रहा है, इसे मेरा प्रतिरूप समझकर स्वीकार करना...”

“मधुकर !...” चिल्ला पड़ी कला—“ऐसे निर्मोही न बनो । मुझे इतनी कड़ी परीक्षा में न डालो...”

“अब समय उग्रयुक्त है कला !...हाँ कह दो, ताकि सुख से यात्रा कर सकूँ...बहुत दूर जाना है मुझे...”

“जाओ मधू !...” कला रोती हुई बोली—“तुमने आज तक मेरा एक भी कहना नहीं माना, मगर मैं तुम्हारी सब आशा का पालन करूँगी...”

लोगों ने देखा—

दीप शिखा तनिक और तीव्र हुई और तब अन्धकार छा गया ।

हाड़-माँस के पिंजरे में बसेरा लेनेवाला पंछी उड़ चला अन आकाश की ओर । निर्मोही ने संसार से अपना नाता तोड़ लिया था

×

×

×

आज—

कला, जीवन में मधुकर का प्रतिबिम्ब खोजती है, परन्तु उसे निराश होना पड़ता है ।

फिर भी वह किसी प्रकार अपना वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही है ।
तड़प-तड़प कर !

रो-रो कर !

और कंचन !

कल से उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है । डाक्टरों ने उसे केवल चौबीस घण्टों का मेहमान बताया है ।

कंचन विस्तरे पर लेटी है । और इस बात की प्रतीक्षा कर रही है, कि कब उसके प्राण पखेरू उड़े और कब वह पलंग की माया छोड़कर जमीन पर आ लेटे ।

रात्रि का समय है । उदास जीवन और कला, कंचन को चारपाई के पास खड़े हुए, एक कोमल फूल का डारी से टूटना देख रहे हैं ।

परन्तु कंचन बहुत प्रसन्न है । उसके होठों पर मौत की मुस्कुराहट है ।

और सामनेवाले मकान का रेडियो बज रहा है—

बिरहिन ! कैसे कटे अब रात !

पी तो तिहारे दूर बसे हैं, नैनन नीर भरात ।

हृदय की आग छिपाये बावरि ! काहे को मुस्कात !

बिरहिन ! कैसे कटे अब रात !

कान्त-साहित्य

- | | |
|------------------|--------------------|
| ४) निर्मोही | ३) कुंकुम |
| २॥) इशारा | ४॥) मदमरे नयना |
| ४) नागिन | ५॥) विद्रोही सुभाष |
| ४॥) चूड़ियाँ | ४) पपिहरा |
| २॥) जलन | ३॥) लालरेखा |
| ३॥) भँवरा | ५) परदेसी २ भाग |
| ४) लवंग | २॥) उड़ते उड़ते |
| ४) मंजिल | १॥) रक्त मंदिर |
| ३॥) आहुति | ३) जंजीर |
| ५॥) नीलम | २॥) बसेरा |
| २॥) पागल | २॥) अकेला |
| २॥) जवानी के दिन | ४) दानवदेश २ भाग |
| २॥) उसके साजन | ४) गोल निशान |
| ॥) कैसे कहूँ | ३॥) हमारी गलियाँ |
| ३॥) पारस | ४) लालकिले की ओर |

२॥) पराजिता (कहानी-संग्रह)

प्राप्तिस्थान—

चिन्मयी-प्रकाशन

वाराणसी—१

